बाल जीवनी माला

१. डारविन	अशोक बोस
२. आइजक न्यूटन	ओमप्रकाश आर्य
३. शरतचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
४. रामानुजन	डा. वजीर हसन आब्दी
५. जगदीशचन्द्र बसु	सुभाष मुखोपाध्याय
६. मिर्ज़ा गालिब	रज़िया सज्जाद ज़हीर
७. निराला	डा. रामविलास शर्मा
८. आर्किमीडिज	गुणाकर मुले
९. भास्कराचार्य	गुणाकर मुले
१०. सी. वी. रामन	विश्वमित्र शर्मा
११. एडिसन	शंकरलाल पारीक
१२. वाल्तेयर	देवीप्रसाद
१३. प्रफुल्लचन्द्र राय	राजीव सक्सेना
१४. मादाम क्यूरी	गीता बन्दोपाध्याय
१५. गेलीलियो	ओमप्रकाश आर्य
१६. पास्कल	गुणाकर मुले
१७. आइंस्टाइन	युगजीत नवलपुरी
१८. केपलर	गुणाकर मुले
१९. राहुल सांकृत्यायन	भदन्त आनन्द कौसल्यायन
२०. बंकिमचन्द्र	विष्णु प्रभाकर
२१. प्रेमचन्द	नागार्जुन
२२ कॉपर्निकस	डा. वजीर हसन आब्दी
२३. लुई पाश्चर	शंकरलाल पारीक
२४. मेंडेलीफ	गुणाकर मुले

प्रत्येक का मूल्य ३ रुपये ५० पैसे

बाल जीवनी माला

भास्कराचार्य

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
रानी झांसी रोड, नई दिल्ली

१९७६

लेखक गुणाकर मुले

सम्पादक मुन्शी

मूल्य : ३ रुपये ५० नये पैसे

जितेन सेन द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लिमिटेड नई दिल्ली की तरफ से प्रकाशित ।

भास्कराचार्य

८०० वर्ष पहले

आज से लगभग ८०० वर्ष पहले की बात है। सह्याद्रि में बसा हुआ विज्जडविड नाम का एक गांव। गांव के पंडित के घर आज बड़ी धूमधाम है। लड़कों के लिए तो मानो दीवाली आ गयी। लेकिन सबसे ज्यादा खुश हैं लड़कियां।

क्यों न हों खुश ? आज उनकी प्यारी सहेली का विवाह जो है। प्यारी सहेली, लीलावती। सुन्दर वस्त्रों और मणि-अलंकारों से सजी हुई। दस साल की दुल्हन !

सब लोग बड़ी आतुरता से विवाह-मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं। लीलावती की सहेलियां तो और भी उतावली हो रही हैं—"अभी और कितनी देर है ?"

"चलो, चलकर 'घटी-यंत्र' में देख लें।"

लीलावती और उसकी सहेलियां 'घटी-यंत्र' में झांक कर देखने लगीं।

"यह घटी-यंत्र क्या है ?" तुम पूछोगे।

सुनो, बताते हैं ...

पानी की घड़ी

उस जमाने में आज जैसी घड़ियां तो थीं नहीं। आज तो बहुत-से आदमियों की कलाई पर घड़ी बंधी मिल जायेगी। मेज पर घड़ी, दीवार पर घड़ी, जेब में घड़ी; समय जानने में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन उस जमाने में जब आज की-सी घड़ियों का आविष्कार नहीं हुआ था, तब भी न केवल रोज के जीवन में, बल्कि ग्रहणों के समय को जानने के लिए, विवाह, यज्ञ, पूजा आदि धार्मिक कृत्यों के मुहूर्त को जानने के लिए, समय की सूक्ष्म गणना की जरूरत पड़ती थी।...

घटिका, पल, विपल।...ठीक आज के जैसे सेकंड, मिनट और घंटे की तरह।

पर उस जमाने में जिन यंत्रों से समय मालूम किया जाता था, उनमें आज की घड़ी की तरह आसानी नहीं थी।

घटी-यंत्र को ही लो।

घटी-यंत्र आधे गोल के आकार-प्रकार का तांबे का एक पात्र होता था। इसकी पेंदी में एक छोटा-सा छेद रहता था। इसे साफ पानी से भरे हुए एक बड़े बर्तन में तरंगित कर दिया जाता था। पेंदी का छेद इतना छोटा होता था कि एक अहोरात्र (दिन-रात) में पात्र ठीक ६० बार ही पानी में डूबता था। इसे 'नाडिका-यंत्र' भी कहते थे।

हां, तो इसी प्रकार के एक घटी-यंत्र को घेर कर लीलावती और उसकी सहेलियां समय देख रही हैं। लेकिन किसी को भी यह पता नहीं चला कि लीलावती के मणि-जड़ित वस्त्रों में से एक मणि टूट कर यंत्र की पेंदी में कब बैठ गया!

पंडित लोग लग्न-घटिका का इंतजार कर रहे हैं, ... कर रहे हैं। लेकिन मुहूर्त-घटिका तो कभी की बीत

चुकी। बाद में पता चला कि यंत्र की पेंदी में, छेद के मुंह पर मणि के बैठ जाने से, भीतर पानी आना बन्द हो गया। इस प्रकार सही समय ज्ञात नहीं हो सका। विवाह का मुहूर्त टल गया। ब्याह रुक गया!

अब ?

अब जानते हो क्या हुआ ? लीलावती को जीवन भर अविवाहित रहना पड़ा!

प्यारी बेटी का नाम

क्या दूसरा मुहूर्त नहीं निकाला जा सकता था ?

नहीं; लीलावती की जन्म-कुंडली देखकर सभी ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि लीलावती के विवाह के लिए शुभ मुहूर्त ही नहीं है। अशुभ मुहूर्त में ब्याह रचा जायेगा तो विवाह के कुछ दिनों बाद ही वह विधवा हो जायेगी।

कल्पना करो उस पिता की जिसकी लड़की के भाग्य में यह सब लिखा हो। परन्तु लीलावती के पिता निराश नहीं हुए।

क्यों ?

क्योंकि वे स्वयं एक प्रकांड ज्योतिषी थे। उन्होंने महीने और वर्ष लगाकर, गणित की सूक्ष्म गणनाओं के आधार पर, अन्त में एक शुभ मुहूर्त खोज ही निकाला था। परिवार के सभी लोगों को आनन्द हुआ था।

लेकिन मुहूर्त आने पर क्या हुआ, यह तुम पढ़ ही चुके हो। लीलावती की थोड़ी-सी असावधानी से लग्न-मुहूर्त की घटिका टल गई—ऐसी घटिका जो उसके जीवन में दुबारा कभी नहीं आई। लीलावती की सहेलियों के दुःख के बारे में क्या पूछना।

और लीलावती ?

लीलावती तो बेचारी भविष्य के बारे में क्या सोच सकती थी भला ? ...लेकिन उसके धीर-गंभीर पिता !

एक बार तो उनके मन में भी आया कि आकाश के ये चन्द्र, सूर्य, ग्रह आदि अपनी गति से चलते हैं, हम मानव भी अपनी गति से चलते रहें; दूसरा अच्छा-सा मुहूर्त खोजकर बेटी का विवाह कर दें। किन्तु बात फैल चुकी थी। फिर, वे स्वयं ज्योतिषाचार्य !

खुद ही शुभ-अशुभ का विचार नहीं करेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? वे यद्यपि अच्छी तरह जानते थे कि यह भाग्य का नहीं, ज्योतिष के बारे में अधूरे ज्ञान का दोष है। तो भी कर ही क्या सकते थे ! बेटी को हृदय से लगाकर बोले :

"तुम तो जानती हो कि मैंने कितनी कोशिश की है। ज्योतिष और घटी-यंत्र ने ही साथ नहीं दिया तो इसमें हमारा क्या दोष ? लेकिन चिंता न करो। मैं

तुम्हें यही विषय पढ़ाऊंगा : अंकगणित, बीजगणित, भूगोल और ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन। गणित ही ज्योतिषशास्त्र का आधार है। इसलिए यह गणितशास्त्र तुम्हें अधिक मन लगाकर पढ़ना होगा। और गणित-शास्त्र पर जो ग्रंथ मैं तैयार करूंगा, उसका नाम होगा ...जानती हो क्या ?"

"क्या"—लीलावती ने पूछा !

"लीलावती—मेरी प्यारी बिटिया का नाम। इस नाम को लोग तब तक याद रखेंगे जब तक मेरे सिद्धान्त जीवित रहेंगे।"

तो क्या 'लीलावती' लिखी गयी ? हां, लिखी गयी। जानते हो 'लीलावती' के जन्मदाता कौन थे ?

भारतीय गणित के पितामह : भास्कराचार्य।

पृथ्वी किस पर टिकी है?...

...भास्कराचार्य ! प्राचीन भारत के सबसे महान गणित-ज्योतिषी। और उनके सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम है : "लीलावती"। उनकी अपनी पुत्री का नाम। "लीलावती"—जिसे भास्कराचार्य ने गणित और ज्योतिष जैसे कठिन विषयों की शिक्षा दी।

मैं जानता हूँ कि तुम्हारे मन में यह जानने की इच्छा हो रही है कि १०-१५ साल की वह बालिका गणित और ज्योतिष जैसे कठिन विषयों को कैसे समझ पायी ? भास्कराचार्य ने लीलावती को कैसे और क्या-क्या पढ़ाया ? गणित, ग्रह और तारों सम्बंधी बातें कैसे समझायीं ?

तुम भास्कराचार्य के बारे में भी तो जानना चाहोगे। कैसे वे इतने महान ज्योतिषी बने, उनके गुरु कौन थे, कहां पैदा हुए थे ? आदि-आदि।

लेकिन सबसे पहले तो तुम यही जानना चाहोगे कि आखिर ज्योतिष होती क्या चीज है ?

ज्योतिष ?

हां, सवाल तो टेढ़ा है ! अच्छा सुनो—

मनुष्य ने जब से सोचना शुरू किया उस समय से ही उसके दिमाग में प्रश्न मंडराते रहें : यह सृष्टि कैसे बनी ? सृष्टि की रचना कैसे हुई ? ये ग्रह, ये तारे कहां से आये ? यह सूर्य कहां से आया और कहां से आयी हमारी यह धरती ?

आज भी तुम्हें कुछ ऐसे लोग मिलेंगे जो यह कहेंगे कि इसमें सोचने की क्या बात है ! 'ईश्वर' के मन में किसी समय कुछ रचने का विचार आया, और उसने यह सब रच दिया !

कुछ लोग कहेंगे कि यह तो बड़ी सरल-सी बात है; झमेले में पड़कर माथापच्ची करने से क्या फायदा ? अनंत काल से यह सृष्टि इसी तरह चली आयी है और इसी तरह चलती रहेगी। हम और यह विश्व कब, क्यों और कैसे अस्तित्व में आये, ये प्रश्न ही पैदा नहीं होते !

परन्तु इस तरह के उत्तरों में यदि कोई सार होता तो संसार की सारी प्रगति ही रुक जाती। हम जंगली आदमियों की स्थिति में होते। संसार के इतिहास में

यदा-कदा गहराई से विचार करने वाले व्यक्ति जन्म लेते रहे हैं, इसीलिए प्रकृति के बहुत-से रहस्यों को आज हम समझने योग्य हो गये हैं।

हमारे देश के प्राचीन विद्वानों ने इन सारे प्रश्नों के बारे में सोचा है। प्रकृति के हर रहस्य के लिए उन्होंने 'ईश्वर' की शरण नहीं ली। आकाश के टिमटिमाते 'दीपों' ने उन्हें चक्कर में अवश्य डाल दिया था। इसीलिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है—

इयं विसृष्टिर्यत आवभूव।
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अंग वेद यदि वा न वेद॥

(इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई है ?
क्या किसी ने इसे रचा है ?
जो आकाश के ऊपर बैठा हुआ है
वही इस बात को जानता है; या शायद वह भी नहीं जानता।)

हमारे प्राचीन विद्वान 'ईश्वर' की शरण में न जाकर बुद्धि की शरण में गये। रातों जागकर ग्रह और तारों की गति-विधि का अध्ययन करते रहे।

इस तरह का परीक्षण केवल कुछ लोग ही कर

सकते थे, इसलिए ज्योतिष का ज्ञान केवल पंडितों तक ही सीमित रहा।

स्पष्ट है कि प्राचीन ज्योतिष की बहुत-सी बातें केवल अटकलबाजियां थीं। पहले के लोग समझते थे कि पृथ्वी सपाट है, या फिर ढाल की तरह उभड़े हुए एक विशाल टीले जैसी है और यह किसी दूसरी वस्तु के सहारे टिकी हुई है। प्राचीन समय के किसी गुरु-शिष्य के बीच इस विषय पर बातचीत हुई होगी तो कुछ इस प्रकार :

"गुरु जी ! पृथ्वी किस पर टिकी हुई है ?" जिज्ञासु शिष्य अपने गुरु से पूछता है।

"चार बड़े हाथियों पर।"

"और हाथी किस पर खड़े हैं, गुरु जी ?"

"एक कछुए पर। बहुत बड़े कछुए पर !"

"और कछुआ किस पर टिका हुआ है ?"

"पानी पर।"

"और पानी किस पर, गुरु जी ?"

"पृथ्वी पर।"

"और पृथ्वी किस पर ?"

"तेरे सिर पर ! तू तो निपट मूर्ख है। कहा न कि हाथियों पर...।"

कुछ दूसरे लोगों ने माना कि यह पृथ्वी शेषनाग पर टिकी हुई है। पाश्चात्य देशों में हजारों वर्षों तक लोगों का विश्वास बना रहा कि यह पृथ्वी 'एटलस' नाम के एक महादानव के कंधों पर टिकी हुई है।

शताब्दियां गुजर गयीं। गुरु-शिष्य की एक लम्बी परम्परा गुजर गयी; परन्तु पृथ्वी किसी न किसी वस्तु पर टिकी की टिकी ही रह गयी।

राहु नहीं, पृथ्वी की छाया

ज्योतिष के अध्ययन के लिए गणित का अध्ययन बहुत जरूरी है। परन्तु गणित और ज्योतिष के सिद्धान्तों में एक बहुत बड़ा अन्तर भी है।

गणित के सिद्धान्त स्वयं-सिद्ध होते हैं। उनके सत्य होने का प्रमाण उसी सिद्धान्त में निहित रहता है, उसे बाहर की किसी वस्तु में नहीं खोजना पड़ता। परन्तु ज्योतिष के अनेक सिद्धान्त ऐसी वस्तुओं से सम्बंधित हैं जो हमसे लाखों-करोड़ों मील की दूरी पर स्थित हैं, जिन्हें हम छू भी नहीं सकते। ऐसी स्थिति में ज्योतिष के बारे में कही गयी सभी बातें सच ही बनी रहें, यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता। सत्य की सीमा में पहुंचने के लिए अनुमानों को हजारों वर्षों का समय लग जाता है।

परन्तु कुछ अंध-विश्वासी लोग, सत्य खोज लिये जाने पर भी, असत्य का पल्ला नहीं छोड़ते। इसीलिए

ज्योतिष-शास्त्र अब दो भागों में बंट गया है : गणित-ज्योतिष और फलित-ज्योतिष !

तुम पूछोगे—इनमें अन्तर क्या है ? ओह ! तुम तो सब कुछ जानने के लिए लीलावती से भी ज्यादा उतावले मालूम होते हो । लो, बता ही दूं...

गणित-ज्योतिष में, गणित के आधार पर आकाश के पिंडों के भौतिक गुण-धर्मों का अध्ययन किया जाता है। फलित-ज्योतिष ढोंगी ज्योतिषियों का पेशा है । इनका कहना है कि आकाश के ग्रह-नक्षत्र पृथ्वी के प्रत्येक आदमी के जीवन पर एक निश्चित प्रभाव डालते हैं । आदमी का जीवन इन ग्रह-नक्षत्रों से पूर्णतः बंधा हुआ है ।

फलित-ज्योतिष के कारण एक बड़ी हानि हुई है । फलित-ज्योतिषियों के प्रमाण-ग्रंथ हैं—फलित-ज्योतिष की पुरानी पोथियां । जमाना बदला, ज्योतिष के सिद्धांत बदले, नये ग्रहों का पता चला, दूरबीन का आविष्कार हुआ, विशाल दूरबीनों से करोड़ों 'प्रकाश-वर्ष' (एक सेकंड में प्रकाश की गति है ३,००,००० किलोमीटर, इस गति से एक वर्ष में प्रकाश-किरणें जितनी दूरी तै करेंगी उसे ज्योतिष-शास्त्र में 'प्रकाश-वर्ष' कहते हैं) की दूरी पर स्थिति नीहारिकाओं के चित्र लिये गये, पृथ्वी

से भेजा हुआ रॉकेट चन्द्रमा पर पहुंचा, आदमी अन्तरिक्ष की उड़ान भरने लगा...

परन्तु इन फलित-ज्योतिषियों की पोथियां नहीं बदलीं ! लोगों को अन्धविश्वास में रख कर ठगना इन लोगों ने नहीं छोड़ा ।

तुम्हें आज भी ग्रहण के दिन सुनाई देगा 'दे दान तो छुटे गिरान,' अर्थात् दान दो तो 'राहु' सूर्य या चन्द्र को छोड़ देगा । यह फलित-ज्योतिष का ही प्रभाव है कि आज भी 'राहु' और 'केतु', आकाश के कल्पित गोल पर दो काल्पनिक बिन्दु, दो खतरनाक 'ग्रह', माने जाते हैं !

लेकिन देखो तो, आज से लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पहले के महान ज्योतिषी आर्यभट क्या कहते हैं—

"...भूमि की छाया का नाम अन्धकार है । सूर्य-ग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित कर लेता है; राहु नहीं । और चन्द्र-ग्रहण में पृथ्वी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है; राहु नहीं ।"

यह है हमारे एक महान गणितज्ञ की वाणी । आर्यभट तो भास्कराचार्य से भी पहले के गणितज्ञ हैं । गणित और ज्योतिष के हमारे आचार्य उन दिनों अपने ज्ञान की मूल बातें अपने शिष्यों को ही बताते थे । ये शिष्य एक

दिन स्वयं इतने विद्वान हो जाते थे कि दूर-दूर से आकर शिक्षार्थी उनके शिष्य बनना अपना सौभाग्य समझते थे ।

लेकिन बारहवीं शताब्दी के गुरु-शिष्य के जिस जोड़े की हम कहानी सुनाने वाले हैं वह अद्भुत जोड़ा था । गुरु थे भास्कराचार्य और शिष्या थी उनकी पुत्री लीलावती . . .।

कल्पना करो कि आज से लगभग ८०० वर्ष पहले महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य के सामने उनकी १० साल की पुत्री बैठी हुई है, पिता से गणित और ज्योतिष पढ़ने के लिए ।

तो चलो, हम और तुम मिल कर भास्कराचार्य के सामने लीलावती के अगल-बगल बैठ जायें और ध्यान से सुनें कि भास्कराचार्य से लीलावती क्या पूछ रही है ।

"पिता जी, यह पृथ्वी जिस पर हम निवास करते हैं, किस पर टिकी हुई है ?"

वह जो सामने बैठे हैं...

लीलावती के प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए तुम उत्सुक हो । लेकिन शायद इससे भी ज्यादा उत्सुक यह जानने के लिए हो कि...

बता दूं ?

वह जो सामने बैठे हुए हैं, वह कौन हैं ?

भा-स्क-रा-चा-र्य ।

लेकिन भास्कराचार्य हैं कौन ? कहां जन्म लिया ? कहां शिक्षा प्राप्त की ? कौन इनके पिता थे ?

उफ् ! एक साथ इतने प्रश्न ! अच्छा, बताता हूँ—

भास्कराचार्य के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि उनका जन्म महाराष्ट्र के सह्याद्रि पर्वत के विज्जडविड नाम के गांव में हुआ ।

आज तो इस नाम का कोई गांव उस प्रदेश में नहीं मिलता, न ही इस गांव के कोई निशान मिलते हैं । लेकिन स्व० डा. भाऊ दाजी ने खानदेश (महाराष्ट्र) के चालीसगांव के निकट एक उजाड़ गांव के मन्दिर में

पत्थर पर खुदे हुए एक लेख (शिलालेख) का पता लगाया है। इस लेख में लिखा है—

"भास्कराचार्य के पौत्र चंगदेव यादववंशीय सिंघन राजा के ज्योतिषी थे। इस सिंघन (सिंह) राजा का राज्य देवगिरि में शक-संवत् ११३२ से ११५९ तक था। चंगदेव ने भास्कराचार्य और उनके वंश के अन्य विद्वानों के अध्यापन के लिए पाटण में एक मठ स्थापित किया..." इत्यादि।

इस शिलालेख के अनुसार भास्कराचार्य के पूर्वजों और वंशजों की नामावली इस प्रकार है :

त्रिविक्रम
|
भास्करभट
|
गोविन्द
|
प्रभाकर
|
मनोरथ
|
महेश्वर
|
भा-स्क-रा-चा-र्य
|
लक्ष्मीधर
|
चंगदेव

भास्कराचार्य स्वयं अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि उन के पिता का नाम महेश्वर है। महेश्वर ही भास्कराचार्य के गुरु भी थे।

उपरोक्त शिलालेख के अनुसार भी महेश्वर भास्कराचार्य के पिता हैं। भास्कराचार्य के ग्रंथ में 'लीलावती' संबोधन तो अनेक बार मिलता है, किन्तु लक्ष्मीधर का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उपरोक्त शिलालेख में, चूंकि पिता का नाम सही है, और अन्य नाम भी एक वंशावली में जंचते हैं, इसलिए यह मान लेना चाहिए कि भास्कराचार्य के पिता का नाम महेश्वर था और जेष्ठ पुत्र का नाम लक्ष्मीधर था।

भास्कराचार्य के पिता उनके गुरु थे और भास्कर का पोता चंगदेव राज-ज्योतिषी था। इन सब बातों से सहज ही पता चलता है कि भास्कराचार्य के वंश में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहा था।

शक-संवत्

तो क्या भास्कराचार्य ने स्वयं अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं लिखा ?

वास्तव में मनुष्य अपने कार्य के द्वारा जीवित रहता है और प्रसिद्धि पाता है, जन्म-स्थान अथवा जन्म-तिथि के नाम से नहीं। इसलिए, महत्त्वपूर्ण किसी महान प्रतिभा का जन्म-स्थान अथवा जन्म-काल नहीं होता, वरन् उसका कृतित्व, उसके आविष्कार और उसके ग्रंथ होते हैं।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के कर्ता अपने ग्रंथों में स्वयं अपने बारे में बहुत कम लिखते थे। भास्कराचार्य के ग्रन्थों का भी यही हाल है। आज की-सी जीवनी लिखने की प्रथा उन दिनों नहीं थी। हां, पण्डित लोग अपने आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की स्तुति में उनकी जीवनी जरूर लिखते रहे हैं। और कभी-कभी ये राजा-

महाराजा बड़े ही धूर्त, लोभी और चाटुकारिता-पसन्द होते थे। लेकिन बेचारे संस्कृत पण्डित करते ही क्या? उन्हें अपने महाराजा का यश-गान लिखना ही पड़ता। तो भी आओ, देखें कि क्या भास्कराचार्य के किसी ग्रन्थ में उनके जीवन के बारे में कुछ मिलता है ?

यह रहा : सिद्धान्तशिरोमणि।

'सिद्धान्तशिरोमणि' भास्कराचार्य का प्रमुख ग्रन्थ है। हां, इस ग्रन्थ में भास्कराचार्य के जन्म-स्थान, जन्म-तिथि आदि का थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है।

'सिद्धान्तशिरोमणि' के 'गोलाध्याय' प्रकरण के एक श्लोक में लिखा है कि "इस ग्रन्थ की रचना के समय मेरी आयु ३६ वर्ष की है और शक-संवत् १०३६ में मेरा जन्म हुआ है।"

तुम शायद शक-संवत् से परिचित नहीं हो। कहोगे, हमें ईसवी-सन् मालूम है। शक-संवत् और ईसवी-सन् में कितने वर्षों का अन्तर है ?

तुम नहीं जानते तो सुन लो।

हमारे देश के प्राचीन साहित्य में अधिकतर शक-संवत् का ही प्रयोग हुआ है; लेकिन आज तो लगभग सभी देशों में ईसवी-सन् का प्रचलन है। तुम भी इसी ईसवी-सन् को पढ़ते-सुनते आये हो। लेकिन इन दोनों

संवतों के अन्तर को समझना तुम्हारे लिए बहुत जरूरी है।

शक-संवत् और ईसवी-सन् में हमेशा ७८ वर्षों का अन्तर रहता है; अर्थात्...

शक-संवत् का वर्ष+७८=ईसवी-सन् का वर्ष।

अतः १०३६ शक-संवत भास्कराचार्य का जन्म-वर्ष+७८=१११४ ईसवी-सन्।

अब तुम सहज ही पता लगा सकते हो कि आज से ठीक कितने साल पहले भास्कराचार्य का जन्म हुआ।

बस : १९६६ - १११४=८५२ वर्ष पहले !

शेषनाग के मस्तक का मणि

आज से ८५२ वर्ष पहले ...

हां, आज से ८५२ वर्ष पहले जन्मे भास्कराचार्य : ज्योतिष के विद्वान ! लेकिन ज्योतिष की अपेक्षा भास्कराचार्य गणित को अधिक महत्व देते थे। इसलिए 'सिद्धान्तशिरोमणि' के ज्योतिष विषय की शुरूआत करने से पहले उन्होंने उस समय तक ज्ञात सम्पूर्ण गणित का आरम्भ के दो अध्यायों में विशद विवेचन किया है।

'गोलाध्याय' के आरम्भ में ही उन्होंने कहा है :

"गणित के दो प्रकार हैं। एक व्यक्त (अंकगणित) और दूसरा अव्यक्त (बीजगणित)। इन्हीं दो प्रकार के गणित में और शब्दशास्त्र (व्याकरण) में प्रवीणता प्राप्त कर लेने पर ज्योतिषशास्त्र के सभी विषयों को जानने के अधिकारी हो सकते हो; अन्यथा तुम नाम-मात्र के ज्योतिषी कहलाओगे।"

तुम भी भास्कराचार्य की इस बात को अपने मन में बांध लो। इसी उम्र में तुम यदि इस बात को अच्छी तरह समझ जाओगे तो गणित की पढ़ाई में तुम्हारा मन और भी लगेगा।

गणित से तुम डरते तो नहीं हो ?

तुम जानते ही हो कि आज का संसार भास्कराचार्य से बहुत आगे बढ़ चुका है। ज्ञान-विज्ञान ने इतनी प्रगति की है कि गणित की जानकारी के बिना आज विज्ञान का अध्ययन सम्भव नहीं है। इसलिए आज यदि तुम कड़ी मेहनत करके गणित का अध्ययन करोगे, तो आगे चलकर विज्ञान की बातों को आसानी से समझ सकोगे।

महान गणित-ज्योतिषी भास्कराचार्य।

भास्कराचार्य से कई शताब्दियों पहले लिखे गये 'वेदांग-ज्योतिष' नामक ग्रंथ में गणित के महत्व को श्लोकबद्ध करते हुए लिखा गया है :

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥

अर्थात्, जिस प्रकार मोरों की शिखाएं (सिर के ऊपर का तुर्रा) और शेषनाग के मस्तक का मणि, सबसे ऊंचे स्थान पर विराजमान हैं, उसी प्रकार वेद आदि शास्त्रों में गणित का स्थान सर्वोच्च है।

अब समझे गणित का महत्व ? तुम्हें यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि आज जिन अंकों का तुम प्रयोग करते हो और जो आज संसार भर में प्रचिलित हैं, वे अंक, और दशमान-पद्धति से उनको लिखने की विधि, का आविष्कार अपने ही देश में हुआ था। प्राचीन यूनान भी, जो कि भारत की ही तरह विकासमान संस्कृति का देश था, हमारी जैसी सुगम अंक-पद्धति से परिचित नहीं था। बड़ी-बड़ी संख्याओं को उनके अंकों में लिखना बहुत ही कठिन काम था।

और, शून्य ? शून्य की जादुई शक्ति को तो तुम कुछ बाद में जानोगे। किसी भी संख्या के आगे शून्य के रखते ही वह संख्या दस गुना बढ़ जाती है। लेकिन शून्य क्या है ? कुछ भी तो नहीं। सिर्फ एक गोलाकार चिह्न, जिसका अर्थ है, 'कुछ भी नहीं'।

लेकिन यही 'कुछ भी नहीं' क्या-क्या कमाल करता है गणित में ! और फिर, गणित के माध्यम से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में !!

शून्य के प्रयोग का आविष्कार हमारे देश में भास्कराचार्य से भी लगभग एक हजार वर्ष पहले हो चुका था। सारा संसार शून्य के आविष्कार के लिए भारत का ऋणी है। पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने भी

इस बात को स्वीकार किया है। अमरीका के जी० बी० हैल्सटेड लिखते हैं : "शून्य के आविष्कार की जितनी भी स्तुति की जाय, कम है।...गणित का दूसरा कोई आविष्कार, ज्ञान और शक्ति को आगे बढ़ाने में इतना प्रबल सिद्ध नहीं हुआ है।"

बाहर के विद्वान हमारे प्राचीन विज्ञान के बारे में क्या-क्या कहते हैं, इसका उल्लेख करके प्राचीन की श्रेष्ठता का बखान मैं तुम्हारे सामने नहीं करना चाहता। जो श्रेष्ठ था, वह श्रेष्ठ ही रहेगा। यहां तुम्हारे लिए जानने की जरूरी बात यह है कि भास्कराचार्य से भी पहले भारत में गणित एवं ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित कौन-कौन से प्रमुख आविष्कार हो चुके थे। फिर, भास्कराचार्य ने इनमें कौन-कौन से सुधार किये और अपनी ओर से क्या-क्या जोड़ा ?

तुम जानना चाहोगे कि भास्कराचार्य से पहले अपने देश में कौन-कौन से बड़े गणित-ज्योतिषी हुए हैं और उन्होंने कौन-कौन से ग्रंथ लिखे हैं। लो, संक्षेप में यह भी बता दूं।
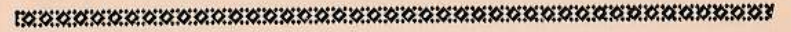
ज्योतिषशास्त्र का स्वर्ण-युग

हमारे देश के बहुत प्राचीन ग्रंथ दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं : एक 'पौरुषेय', अर्थात् जिनके कर्ताओं का नाम हमें ज्ञात है; दूसरे 'अपौरुषेय', अर्थात् जिनके कर्ताओं के नाम हमें ज्ञात नहीं।

'अपौरुषेय' ग्रन्थों में वैदिक-ग्रन्थ प्रमुख हैं। 'सिद्धान्त-ग्रन्थ' (सूर्य, वसिष्ठ, आदि), जो कि ज्योतिष ग्रन्थ हैं, 'अपौरुषेय' वर्ग के हैं। 'अपौरुषेय' के माने यह नहीं हैं कि ये ग्रन्थ आसमान से टपके हैं। ये भी आदमी या आदमियों ने ही रचे हैं। बात सिर्फ यह है कि अति प्राचीन रचनाएं होने से इनके रचनाकारों का हमें पता नहीं चलता।

और फिर, उस काल में आज जैसी पुस्तकों का मुद्रण तो होता नहीं था। हाथ से लिखने की परम्परा भी आरम्भ नहीं हुई थी। पूरा का पूरा 'ग्रन्थ' गुरु-शिष्य की परम्परा में कंठस्थ होता था।

गणित-ज्योतिष का प्रथम प्रमुख 'पौरुषेय' ग्रन्थ, जो आज उपलब्ध है, 'आर्यभटीय' है। यह ग्रन्थ ई. स. ४९९ में लिखा गया था। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, इसे 'आर्यभट' नामक ज्योतिषी ने लिखा। ये कुसुमपुर (पटना) के रहने वाले थे और इनका जन्म ४७६ ई. में हुआ था।

वास्तव में, आर्यभट से ही भारतीय गणित एवं ज्योतिषशास्त्र का 'स्वर्ण-युग' शुरू होता है। और, इसकी समाप्ति होती है बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में—भास्कराचार्य की मृत्यु के साथ। भारत के महान गणितज्ञ एवं ज्योतिषी वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीर, लल्ल, श्रीपति आदि इसी काल में हुए हैं।

इसी काल में भारतीय गणित एवं ज्योतिष का पूर्ण विक.स हुआ। बगदाद के खलीफा भारत से गणित और ज्योतिष के ग्रंथ अपने देश ले गये और अरबी-फारसी में उनका अनुवाद कराया। बाद में लैटिन-भाषा में इनका अनुवाद हुआ; भारतीय विज्ञान यूरोप के देशों में फैला।

भारतीय गणित और ज्योतिष ने यूरोप को कितना प्रभावित किया, इसे यूरोप के प्रसिद्ध गणित-इतिहासज्ञ काजोरी के ही शब्दों में पढ़ो :

"यह विचार करने की बात है कि भारतीय गणित ने हमारे वर्तमान विज्ञान में किस हद तक प्रवेश किया है। आज के अंकगणित और बीजगणित, दोनों की पद्धतियां भारतीय हैं, यूनानी नहीं। गणित के उन सम्पूर्ण और शुद्ध चिन्हों पर विचार करो, भारतीय गणित की उन क्रियाओं पर विचार करो, जो आज की गणित-क्रियाओं की तरह परिपूर्ण हैं। उनके बीजगणित की विधियों पर भी विचार करो और फिर सोचो कि गंगा के तट पर रहने वाले ब्राह्मण (अर्थात्, एक विदेशी प्रशंसक की दृष्टि में, भारतीय पंडित) किस श्रेय के भागी नहीं हैं। दुर्भाग्य से, भारत के कई अमूल्य आविष्कार यूरोप में बहुत बाद में पहुंचे। यदि वे दो-तीन शताब्दी पहले पहुंचते तो उनका प्रभाव और भी अधिक होता।"

प्रसिद्ध गणितज्ञ डी. मार्गन तो यहां तक कहते हैं कि "भारतीय-गणित यूनानी-गणित से उच्चकोटि का है। भारतीय गणित वह है जिसे आज हम उपयोग में लाते हैं।"

ये सब बातें जानकर तुम शायद पूछना चाहते हो—यदि हमारा विज्ञान सचमुच इतना श्रेष्ठ था, तो आर्किमीदिज, पाइथेगोरस, यूक्लिद, टॉलमी, न्यूटन,

गैलीलियो, कॉपर्निकस आदि वैज्ञानिकों की तरह भास्कराचार्य, आर्यभट, नागार्जुन, वराहमिहिर आदि भारतीय वैज्ञानिकों का परिचय स्कूलों में क्यों नहीं दिया जाता ?

तुमने सचमुच बड़ा अच्छा प्रश्न पूछा है। इस प्रश्न का उत्तर तुम अपने शिक्षकों से पूछ सकते हो।

लेकिन अभी तो तुम लीलावती के पास बैठे हो, गुरु भास्कराचार्य के सामने। इसलिए ध्यान को इधर-उधर के प्रश्नों पर न जाने दो, अन्यथा तुम्हें यहां से उठ जाना पड़ेगा।

पाटी-गणित

वाह-वाह ! लीलावती की तरह भास्कराचार्य के सामने जाकर तो बैठ गये हो, पर पहले यह तो जान लो कि आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले पंडित लोग अपने शिष्य को किस तरह गणित पढ़ाते थे।

'पाटी-गणित' अर्थात् अंकगणित सीखने वाले विद्यार्थी को सबसे पहले गणित का सूत्र, जो कि पद्य रूप में होता था, कंठस्थ करना पड़ता था। इसके बाद सूत्र का उपयोग करके गणित के प्रश्न हल कराये जाते थे। प्रश्न भी रटने पड़ते थे।

लेकिन, भास्कराचार्य का तरीका थोड़ा भिन्न है। पहले वे लीलावती को सरल भाषा में गणित के सूत्र समझाते हैं और बाद में उन्हें वे पद्य रूप में लिखते जाते हैं। पुस्तकों की छपाई की व्यवस्था नहीं है; अतः अधिकांश पुस्तकें कंठस्थ ही करनी पड़ती हैं। तुम तो इस

बात को जानते ही हो कि गद्य की अपेक्षा पद्य को कंठस्थ करना आसान होता है। इसलिए ऐसे पद्य की रचना गठी हुई और संक्षिप्त होती है।

गणना पाटी पर की जाती है, इसलिए अंकगणित को 'पाटी-गणित' भी कहा जाता है। पाटी पर धूल बिछा कर उंगली के अग्रभाग से या लकड़ी की नोकीली कील से अंक लिखे जाते हैं। इसलिए अंकगणित का एक दूसरा नाम भी है।

क्या ?

'धूलि-कर्म'।

लेकिन तुम तो शिक्षण की नयी पद्धति के अभ्यस्त हो। कापी, फाउंटेनपेन, यहां तक कि बॉलप्वाइंटपेन ! पाटी पर धूल फैलाकर गणना करना तो तुमसे होगा नहीं।

इसलिए देखो और सुनो कि लीलावती को भास्कराचार्य क्या सिखा रहे हैं। तुम्हारे लिए इतना ही कष्ट काफी है कि भास्कराचार्य के सामने चुपचाप बैठे रहो।

हां, तो क्या सिखा रहे हैं भास्कराचार्य ?

सुनो...

सबसे पहले 'दशगुणोत्तर संज्ञाएं'...

एक	=१
दश	=१०
शत	=१००
सहस्र	=१०००
अयुत	=१००००
लक्ष	=१०००००
प्रयुत	=१००००००
कोटि	=१०००००००
अर्बुद	=१००००००००
अब्ज	=१०००००००००
खर्व	=१००००००००००
निखर्व	=१०००००००००००
महापद्म	=१००००००००००००
शंकु	=१०००००००००००००
जलधि	=१०००००००००००००००
अन्त्य	=१००००००००००००००००
मध्य	=१०००००००००००००००००
परार्ध	=१००००००००००००००००००

तुम देखोगे कि 'परार्ध' का अर्थ है १ के आगे १८ शून्यों वाली संख्या। तुम शायद यह भी कहोगे कि

इतनी बड़ी संख्या की तो हमें जरूरत भी नहीं पड़ती। फिर, इतनी बड़ी संख्याओं के नाम भी नहीं सुने।

लेकिन यहां तो केवल 'परार्ध' तक ही संख्या-नाम बताये गये हैं। भास्कराचार्य से भी एक हजार वर्ष पहले लिखे गये 'ललितविस्तर' नाम के संस्कृत ग्रंथ में १ के आगे ५३ शून्य लिखे जाने तक की संख्याओं के नाम बताये गये हैं। है न अद्भुत बात?

इन सभी संख्याओं में आगे आने वाली संख्या या संज्ञा अपने पीछे वाली संज्ञा से दस गुनी अधिक है, इसीलिए इन संज्ञाओं को 'दशगुणोत्तर संज्ञाएं' कहते हैं।

लो अब सुनो, गणित के मूल परिकर्म।...

भारतीय गणित में मूल परिकर्म आठ माने गये हैं: (१) संकलन (जोड़), (२) व्यवकलन (घटाना), (३) गुणन (गुना करना), (४) भाग (भाग करना), (५) वर्ग (वर्ग करना), (६) वर्गमूल (वर्गमूल निकालना), (७) घन (घन करना), (८) घनमूल (घनमूल निकालना)।

शायद तुम इन सभी क्रियाओं को जानते हो। हमारे देश में गणित की ये सभी क्रियाएं दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले मालूम थीं।

लेकिन भास्कराचार्य लीलावती को एक बड़ी अद्भुत बात बता रहे हैं:

"इन सभी परिकर्मों में मूल परिकर्म केवल दो ही हैं—वृद्धि और ह्रास। जोड़ वृद्धि है, और घटाना ह्रास है। इन्हीं दो मूल क्रियाओं से सम्पूर्ण गणितशास्त्र व्याप्त है।"
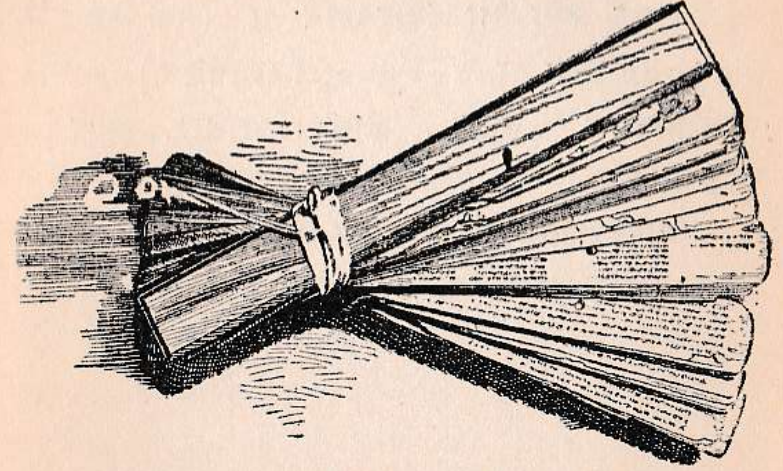
लीलावती की तालपत्र पर लिखी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक

कितनी आधुनिक बात है! आजकल बड़ी से बड़ी और कठिन से कठिन गणनाओं का उत्तर 'विद्युतगणक-यंत्र' से थोड़े से समय में ही मिल जाता है।

गणितज्ञ लोग सर्वप्रथम कठिन परिकर्मों वाले सूत्रों को केवल 'जोड़ना' और 'घटाना' क्रिया में सरल रूप से लिखते हैं। इससे सूत्र का स्वरूप फैल जरूर जाता है; परन्तु मूल सूत्र की बात नहीं बदलती। फिर उस

फले सूत्र में, जिसमें केवल वृद्धि और ह्रास के ही चिह्न (+, —) होते हैं, विद्युत-संकेतों में बदल दिया जाता है, जैसे कि जोड़ के लिए सीधा प्रवाह और घटाने के लिए उलटा प्रवाह, या फिर अन्य कोई सरल व्यवस्था।

इसके बाद तो विद्युतगति से (एक सेकंड में १८६००० मील या ३००००० किलोमीटर) गणन-कार्य होता है... वृद्धि ... ह्रास... ह्रास ... ह्रास... वृद्धि...वृद्धि!!

भास्कराचार्य की वही मूल सूझ !

अंकों का 'वध' ?

हां, तो भास्कराचार्य एक-एक परिकर्म लेते हैं। पहले संकलन .... जोड़ना ....। फिर व्यवकलन ... घटाना....। इन दोनों क्रियाओं के लिए भास्कराचार्य नियम बताते हैं: "अंकों को अपने स्थानों के अनुसार क्रम से अथवा उत्क्रम से जोड़ना (या घटाना) चाहिए।" यह सब तो तुम जानते ही हो।

अब गुणन क्रिया। ....तुम कहोगे—इसे भी मैं जानता हूं। बहुत अच्छा। लेकिन क्या तुम यह जानते हो कि 'गुणन' शब्द का मूल अर्थ क्या है ?

नहीं ? तो सुनो....

यह शब्द बहुत पुराना है, लगभग तीन हजार वर्ष पुराना। और इसका मूल अर्थ है: 'वध करना', 'नष्ट करना'।

तुम कहोगे: "गुणन करते समय हम अंकों का वध तो नहीं करते ?"

ठीक है । लेकिन बहुत पहले, जब कि गुणन-क्रिया आज की तरह कागज पर नहीं, बल्कि पाटी पर धूल बिछा कर की जाती थी, तब अंकों का एक प्रकार से वध ही किया जाता था । उस समय के गुणन-नियम के अनुसार गुण्य राशि के अंक एक-एक करके मिटा दिये जाते थे और उनके स्थान पर गुणनफल के अंक लिख दिये जाते थे । इसे गुणन की 'कपाट-संधि विधि' कहते
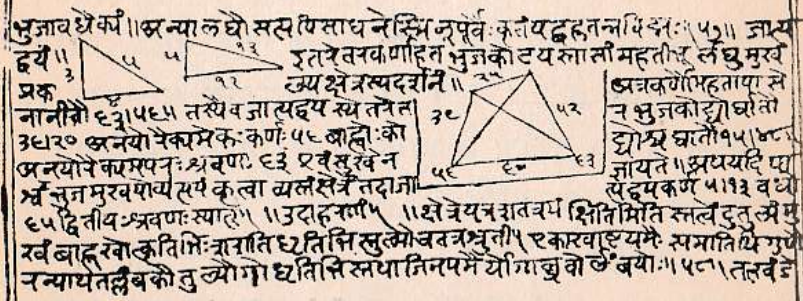
लीलावती की कागज पर हस्तलिखित प्रति का एक पृष्ठ

हैं । तुम तो जानते ही हो कि जिस संख्या को गुणा किया जाता है उसे 'गुणक' कहते हैं, गुणा करने से जो संख्या प्राप्त होती है उसे 'गुणनफल' कहते हैं ।

तुम्हें गुणन की शायद एक-दो विधियां ही मालूम

हों; लेकिन भास्कराचार्य ने 'लीलावती' में गुणन की पांच विधियां बतायी हैं । ये विधियां उनकी पुस्तक 'लीलावती' में लिखी हैं । वैसे प्राचीन भारतीय गणितज्ञों ने सब मिलाकर गुणन की सात विधियों का उपयोग किया है, और साथ ही यह भी लिख दिया है कि "बुद्धिमान व्यक्ति गुणन की अनेक दूसरी विधियां निकाल सकता है ।" इसलिए यह काम अब तुम्हारा है । प्राचीन गुणन-विधियों के नाम ये हैं : (१) कपाट-संधि विधि, (२) क्रम (अनुलोम) विधि, (३) उत्क्रम (विलोम) विधि, (४) तिर्यक्-गुणन विधि, (५) स्थान-खंड गुणन, (६) गोमूत्रिका विधि, (७) बीजीय विधि... इत्यादि ।

इन सब में 'कपाट-संधि विधि' सबसे अधिक प्राचीन है । इसी विधि के कारण इस गणित क्रिया का नाम 'गुणन' पड़ा । यह विधि ई. पू. ३०० के लगभग ज्ञात थी । गुणन की यह विधि अरब देश में अपनायी गयी, जहां के लोगों ने भारतवासियों से दशमलव गणित सीखा । इस विधि का उल्लेख अल्-ख्वारिज्मी (८२५ ई.), अल्-नवसी (लगभग १०२५ ई.) आदि अरब गणितज्ञों के ग्रन्थों में मिलता है । अल्-नवसी ने तो इस विधि को 'अल्-अमल अल्-हिन्दी' तथा

'तारिक अल्-हिन्द' कहा है। अरब से आठवीं शताब्दी के बाद ये विधियां यूरोप के देशों में प्रचलित हुईं।

भाग की क्रिया को तुम जानते ही हो। जिस प्रकार जोड़ने से गुणन का सम्बंध है, उसी प्रकार घटाने की क्रिया से भाग का सम्बंध है। इस क्रिया के अन्य नाम हैं: भागहार, भाजन, हरण, छेदन इत्यादि। जिस संख्या को भाग देना हो उसे 'भाज्य', और जिससे भाग देना होता है उसे 'भाजक' या 'हर' कहते हैं। भाग करने से प्राप्त संख्या को 'लब्धि' कहते हैं।

१५वीं और १६वीं शताब्दी के यूरोप के लेखक विडमैन, रीज आदि लिखते हैं कि "भाग की क्रिया बहुत कठिन है।" किन्तु भारत में भाग की विधि बहुत प्राचीन काल से ज्ञात थी और उसे कठिन नहीं माना जाता था। इसलिए बहुत से गणितज्ञों ने इस क्रिया को अधिक महत्व नहीं दिया। लेकिन, वर्गमूल और घनमूल की विधियों के लिए चूंकि इस परिकर्म की जरूरत पड़ती है, इसलिए भाग का थोड़ा परिचय दे दिया जाता था।

जोड़ना, घटाना, गुणन और भाग की क्रियाओं को तो तुम निश्चित रूप से जानते हो। लेकिन क्या वर्गमूल और घनमूल की क्रियाओं को भी जानते हो?

भास्कराचार्य लीलावती को क्या सिखा रहे हैं...

वर्ग और वर्गमूल

"अये बाले लीलावती! वर्गाकार क्षेत्र और उसका क्षेत्रफल 'वर्ग' कहलाता है। दो समान संख्याओं का गुणन भी 'वर्ग' कहलाता है। इसी प्रकार, तीन समान संख्याओं का गुणनफल 'घन' है, और बारह बराबर कोष्ठों और समान भुजाओं वाला ठोस भी 'घन' है।"

वर्ग और घन निकालने की प्रचलित विधि के साथ, जिसे तुम जानते हो, भास्कराचार्य ने उनके लिए निम्नलिखित सूत्रों का उपयोग करने का भी आदेश दिया है—

$$(क+ख)^{२} = क^{२} + २कख + ख^{२}$$

$$(क+ख)^{३} = क^{३} + ३कख(क+ख) + ख^{३}$$

जैसे, यदि १०९ का वर्ग ज्ञात करना हो तो तुम उसे सूत्र रूप में यूं लिख कर ज्ञात कर सकते हो:

$१०९^{२}$

$=(१००+९)^{२}$

$=१००^२ + २(१०० \times ९) + ९^२$

$=१०००० + १८०० + ८१$

$=११८८१$ उत्तर।

इसी प्रकार, घन के लिए दूसरे सूत्र का उपयोग होता है।

'मूल' शब्द सस्कृत साहित्य में पेड़ या पौधे की 'जड़' के अर्थ में, और इसी सन्दर्भ में 'किसी वस्तु का निम्नतम भाग', 'कारण', 'उद्‌गम' आदि अर्थों में भी प्रयुक्त होता रहा है। इसलिए प्राचीन गणित में 'वर्गमूल' का अर्थ था 'वर्ग का कारण' या 'उद्‌गम' अर्थात 'वर्ग की एक भुजा'। इसी प्रकार 'घनमूल' का अर्थ।

वर्गमूल और घनमूल निकालने की अनेक विधियां प्राचीन समय में प्रचलित रही हैं। मध्ययुग में ये विधियां अरब में पहुंचीं। बाद में लैटिन भाषा में इनका अनुवाद हुआ और ये यूरोप में फैलीं।

इन परिकर्मों से प्राप्त उत्तर सही हैं या नहीं, यह जानने के लिए तुम्हारे अध्यापक ने तुम्हें शायद '९ की परीक्षा-विधि' या अन्य कोई विधि अवश्य बतलायी होगी। गुणन और भाग के परीक्षण के नियम हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ज्ञात थे। भास्करा-

चार्य अपने 'करणकुतूहल' ग्रन्थ में इस विधि का स्पष्टीकरण इन शब्दों में करते हैं :

"गुण्य और गुणक दोनों को अलग-अलग ९ से भाग देने पर जो शेष आयें, उनके गुणनफल को ९ से भाग दो। यदि उपलब्ध शेष, गुण्य और गुणक के घात (गुणनफल) को ९ से भाग देने से प्राप्त शेष के बराबर हो, तो गणित को शुद्ध मानना चाहिए।"

तुम चाहो तो दो संख्याओं को गुणा करके इस नियम की परीक्षा ले सकते हो।

भिन्नों को तो तुम जानते हो न? $\frac{अ}{ब}$ के रूप में लिखे जाने वाले अपूर्णांक। बहुत प्रचीन काल से हमारे देश में भिन्न-परिकर्म के उदाहरण मिलते हैं।

भास्कराचार्य के समय में तो भिन्न-परिकर्म की सभी विधियां ज्ञात हो चुकी थीं। भिन्न, जिसे अंग्रेजी में 'फ्रैक्शन' कहते हैं, का अर्थ है—'टूटा हुआ'। भिन्नों को अति प्राचीन काल से उसी प्रकार लिखा जाता रहा है जैसे कि तुम आज उन्हें लिखते हो। परन्तु उस समय अंश और हर को विभाजित करने वाली रेखा का उपयोग नहीं किया जाता था।

हे लीलावती ! जिस प्रकार यह जगत...

'त्रैराशिक' का नाम तो तुमने अवश्य सुना होगा। इस विधि में तीन राशियों का समावेश रहता है। इसलिए इस विधि को त्रैराशिक कहते हैं। इसका स्वरूप इस प्रकार होता है :

"यदि 'प्र' (प्रमाण) में 'फ' (फल) मिलता है, तो 'इ' (इच्छा) में क्या मिलेगा ?"

त्रैराशिक के प्रश्नों में फल-राशि को इच्छा-राशि से गुना करना चाहिए और प्राप्त गुणनफल को प्रमाण-राशि से भाग देना चाहिए। इस प्रकार भाग करने से जो लब्धि प्राप्त होती है, वही इच्छा-फल है।

'त्रैराशिक' नियम की सरलता और साधारण प्रश्नों में इसके प्रयोग की अधिकता के कारण भारतीय गणितज्ञों ने इस नियम की बड़ी प्रशंसा की है।

देखो लीलावती से भास्कराचार्य क्या कह रहे हैं ? वह कह रहे हैं :

"हे लीलावती ! जिस प्रकार यह जगत्, जन्म-मरण के दुःखों को हरने वाले तथा अखिल विश्व की सृष्टि के एकमात्र कारण, भगवान श्रीकृष्ण के सारे भुवन, भावन, पर्वत, नदी, सुर, नर, असुर इत्यादि के भेदों से व्याप्त है, उसी प्रकार सम्पूर्ण गणित त्रैराशिक से व्याप्त है।"

एक दूसरे स्थान पर भास्कराचार्य लिखते हैं—

"वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल के अतिरिक्त जो कुछ गणना की जाती है, वह सब त्रैराशिक का भिन्न-भिन्न रूप है, कोई दूसरी वस्तु नहीं।"

आज तो गणितशास्त्र काफी विकसित हो गया है। इसलिए त्रैराशिक की इस प्रशंसा को तुम्हें अंक-गणित तक ही सीमित रखना चाहिए।

आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले हमारें देश में 'त्रैराशिक' के नियम का आविष्कार हुआ। अरब देश में यह नियम आठवीं शताब्दी में पहुंचा। अरबी गणितज्ञों ने 'त्रैराशिक' को 'फी राशिकात अल्-हिन्द' का नाम दिया है। बाद में यह यूरोप में फैला, जहां इसे 'स्वर्ण-नियम' ('गोल्डन रूल') की उपाधि दी गयी।

न केवल त्रैराशिक, बल्कि हमारे प्राचीन गणितज्ञों को पंचराशिक, सप्तराशिक और नवराशिक तक का ज्ञान था !

कमल समूह में कितने फूल ?...

क्या तुमने 'इष्ट-कर्म' का नाम सुना है ? गणित का यह एक प्रसिद्ध नियम है। भास्कराचार्य ने इष्ट-कर्म को विशेष महत्व दिया है और इसे 'कल्पना का नियम' (इष्ट-कर्म) कहा है। भास्कराचार्य इस नियम का स्पष्टीकरण इस तरह करते हैं :

"किसी कल्पित संख्या को प्रश्न के अनुसार गुणा करना, भाग देना, घटाना अथवा जोड़ना चाहिए। दी हुई 'इष्ट' संख्या को कल्पित संख्या से गुणा करके उसे ऊपर लिखी विधि से प्राप्त संख्या द्वारा भाग देना चाहिए। इस प्रकार इष्ट-राशि प्राप्त होती है। यही 'इष्ट-कर्म' कहलाता है।"

अरे, तुम लीलावती के मुंह की ओर क्या देख रहे हो ? घबराओ नहीं। भास्कराचार्य तुमसे प्रश्न नहीं पूछेंगे। हां, तो वह लीलावती से पूछ रहे हैं :

"निर्मल कमलों के एक समूह के तृतीयांश, पंचमांश और षष्ठमांश से क्रमशः शिव, विष्णु और सूर्य की पूजा की, चतुर्थांश से पार्वती की, और शेष छः कमलों से गुरुचरणों की पूजा की गयी। अय बाले लीलावती ! शीघ्र बता कि उस कमल-समूह में कुल कितने फूल थे ?"

नहीं, नहीं। लीलावती की पाटी की ओर नहीं देखो। क्या तुम इस प्रश्न का उत्तर निकाल सकते हो ? जरूर निकाल सकते हो। बहुत ही सरल प्रश्न है।

देखो तो, उत्तर १२० कमल आता है न ? यही उत्तर लीलावती ने निकाला है।

सरल समीकरण और वर्ग-समीकरण का नाम तुमने सुना है ? आरम्भिक गणित में यह समीकरण वाला गणित कुछ अधिक कठिन होता है। वर्ग समीकरण के प्रश्न में अज्ञात-राशि वर्ग के रूप में रहती है।

अच्छा सुनो, अब भास्कराचार्य लीलावती से एक दूसरा प्रश्न पूछते हैं :

"रण में क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कर्ण को मारने के लिए वाण चलाये। आधे वाणों से कर्ण के वाणों का निवारण करके, चलाये हुए सारे वाणों के वर्गमूल के

चौगुने से उसके घोड़ों को मार डाला, तीन वाणों से क्रमशः छत्र, ध्वजा, और घनुष का खंडन किया और
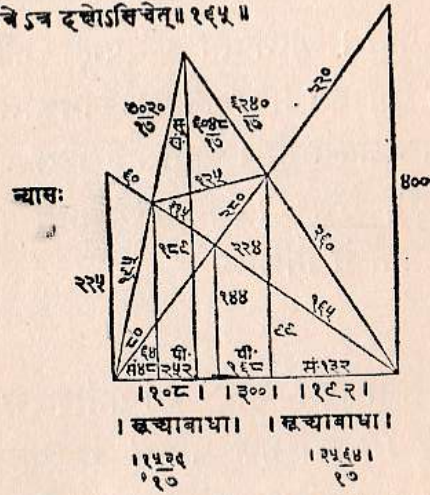
लीलावती ग्रन्थ में ज्यामिति का एक प्रमेय

एक बाण से उसका सिर काट डाला। अय लीलावती, बता कि अर्जुन ने कुल कितने वाण चलाये ?"

कितना रोचक प्रश्न है। लेकिन, लगता है लीलावती बैठे-बैठे थक गयी है। और फिर, उसका मन भी महाभारत की कथा में चला गया है।

तुम भी थोड़ा विश्राम चाहते हो शायद। लेकिन यह जान लो कि आगे भास्कराचार्य लीलावती को एक बहुत महत्वपूर्ण बात समझाने वाले हैं। वही 'कुछ नहीं' की बात ! 'कुछ नहीं' का चमत्कार ! 'शून्य' का गणित !...

और फिर, एक नयी बात : 'अनन्त क्या है ?'...

शून्य की परिभाषा

शुरू में तुम पढ़ चुके हो कि शून्य और उसका प्रयोग पूर्णतः भारतीय आविष्कार है। तुम यह भी जान चुके हो कि अंकों को दस के आधार पर (दश-मान-पद्धति से) लिखने के लिए इस शून्य का कितना महत्व है। भारतीय गणितज्ञ शून्य को भी अन्य अंकों की तरह एक अंक ही मानते थे और इसे सूचित करने के लिए एक सांकेतिक चिह्न प्रचलित था।

तुम देख ही चुके हो कि गणित के सभी परिकर्मों में शून्य का उपयोग होता है। लेकिन इतने से ही हमारे प्राचीन गणितज्ञों को संतोष होने वाला नहीं था। वे समझ गये कि इस 'कुछ नहीं' में बहुत कुछ छिपा हुआ है। खोज आरम्भ हुई। एक के बाद दूसरा गणितज्ञ...

शून्य की परिभाषा दी है : अ—अ=० ।

भास्कराचार्य शून्य-परिकर्म के बारे में लीलावती को बता रहे हैं :

"शून्य में किसी संख्या को जोड़ने पर योगफल जोड़ी हुई संख्या के बराबर आता है। शून्य का वर्ग आदि (वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल) करने पर भी फल शून्य मिलता है। किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर हर के स्थान में शून्य हो जाता है; परन्तु बाद में यदि और परिकर्म करने हैं तो गुणनफल को शून्य न लेकर, शून्य को गुणक की तरह रखना चाहिए। यदि किसी संख्या का गुणक शून्य हो और हर भी शून्य हो तो समझना चाहिए कि उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसी प्रकार शून्य को जोड़ने और घटाने पर भी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता।"

अच्छा, भास्कराचार्य तो अपनी बात कह चुके। अब मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूं। बताओ तो, $\frac{अ}{०}$ का मान क्या होगा ? तुम शायद कहोगे, 'कुछ भी नहीं' या 'शून्य'।

लेकिन शून्य की एक ऐसी राशि के रूप में कल्पना करो जो कि अत्यन्त छोटी संख्या है, और धीरे-धीरे शून्य में विलीन हो जाती है : जैसे, ०.००००००१, ०.०००००००१, ... ०.००००००००००००००१, ... जो अन्त में शून्य में विलीन हो जाती है।

शून्य की ओर शनैः-शनैः अग्रसर होने वाली इन्हीं राशियों से यदि हम किसी संख्या को, मान लो कि 'अ' को, भाग देते हैं तो उस भिन्न का मान शनैः-शनैः बढ़ता ही जायगा। जैसे,

$$\frac{अ}{०.००१} = \frac{अ}{\frac{१}{१०००}} = १००० \text{ अ}$$

$$\text{और, } \frac{अ}{०.००००००००१} = १००००००००० \text{ अ}$$

यह तो बड़ी अद्भुत बात है। है न? हर के स्थान की संख्या का मान धीरे-धीरे घट कर शून्य की स्थिति पर पहुंच रहा है, लेकिन भिन्न का मान उसी अनुपात में बड़ा....बहुत बड़ा....होता जा रहा है। क्या कहोगे इस बहुत बड़ी संख्या को?

गणित में इसे 'अनंत' (इन्फिनिटी) राशि कहते हैं और आधुनिक गणित में इस 'अनंत' के लिए चिह्न है : ∞।

उपर की बात को यदि आधुनिक गणित के रूप में लिखा जाय तो इस प्रकार लिखा जायेगा :

यदि क्ष $\rightarrow$ ०, तब $\frac{अ}{क्ष} \rightarrow \infty$ (अनंत

भास्कराचार्य प्रथम गणितज्ञ हैं जिन्होंने 'परमाल्प संख्या' के रूप में शून्य की कल्पना करके 'अनंत' की इस धारणा को अधिक स्पष्ट किया। इसी धारणा को और आगे बढ़ाकर भास्कराचार्य अवकलन-गणित (कैलकुलस) की मूल बातों पर पहुंच गये थे, जबकि कलन-शास्त्र का आविष्कार, भास्कराचार्य से लगभग ६०० वर्ष बाद, न्यूटन और लीबनीज ने किया। वास्तव में कलनशास्त्र के मूल सिद्धान्तों का आभास हमें भास्करा-चार्य के ग्रंथ में भी मिलता है।

अनन्त का रहस्य

हां, तो अब तुम समझ गये हो कि $\frac{\text{अ}}{\text{०}}$ का सच्चा मान ० (शून्य) न होकर, ∞ (अनंत) है।

लेकिन तुम कहोगे, यह 'अनंत' क्या बला है? गणित में इसका उपयोग कैसे होता है?

तो सुनो, भास्कराचार्य की बताई हुई बातें।

तुम यह तो जानते ही हो कि संख्याओं के इस १, २, ३, ४, ५... क्रम का कोई अन्त नहीं। पहले की संख्या में १ को जोड़ देने पर आगे की संख्या मिलती है और यह क्रम चलता ही रहता है; इसका कोई अन्त नह। इस पुस्तक के पहले पृष्ठ की पहली पंक्ति में १ का अंक रख कर पुस्तक के आखिरी पन्ने तक सब शून्य ही शून्य लिखे जायें, तब भी वह संख्या 'अनन्त' नहीं कहलायेगी—भलें ही तुम

उसे 'बहुत-बहुत-बहुत-बहुत-बहुत बड़ी' संख्या का नाम दो।

भास्कराचार्य 'बड़ी संख्या' और 'अनन्त' के अन्तर को अच्छी तरह जानते थे। किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर $\left(\frac{\text{अ}}{\text{०}}\right)$ जो लब्धि मिलती है, उसे उन्होंने 'ख-हर' (वह राशि जिसका हर 'ख' अर्थात् शून्य हो) कहा है। 'ख-हर' (अनन्त) के मान के बारे मैं भास्कराचार्य 'बीजगणित' में लिखते हैं:

अस्मिन्विकारः खहरे न राशा—
वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकाले
ऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥४॥ 'बीजगणित'।

अर्थात् "जिस प्रकार अनन्त और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से अथवा सृष्टि के समय उनके निकल जाने से, कोई विकार नहीं होता; उसी प्रकार इस शून्य हर वाली, 'ख-हर' राशि में, बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने अथवा घटाने से कोई परिवर्तन नहीं होता।"

तुम्हें यह मालूम होना चाहिए कि संसार के समस्त जीवों की संख्या अनन्त नहीं है; संसार के सभी

पेड़ों की सभी पत्तियों की संख्या अनन्त नहीं है; विश्व के सभी तारों की संख्या अनन्त नहीं है; यहाँ तक कि विश्व के अणु-परमाणुओं की संख्या भी अनन्त नहीं !

संक्षेप में, इस भौतिक-विश्व में ऐसी कोई वस्तु-संख्या नहीं है, जिसे 'अनन्त' कहा जा सके !

और भास्कराचार्य 'अनन्त' के इस स्वरूप को बहुत अच्छी तरह समझ गये थे। वे जानते थे कि इस विश्व में 'अनन्त' नाम की कोई वस्तु नहीं है।

मैं समझ रहा हूँ कि तुम उलझन में पड़ गये हो। 'कुछ नहीं' की बात को तो तुम शून्य के अर्थ में मान गये थे और गणित में उस 'कुछ नहीं' का कमाल भी देख लिया है। यह भी देख लिया है कि इस 'कुछ नहीं' को यदि गणित से हटा दिया जाय, तो गणित में 'कुछ नहीं' रहता।

शून्य को तो तुमने स्वीकार कर लिया। उसी तरह इस 'अनन्त' को भी स्वीकार करना होगा।

यह जान लो कि उच्च-गणित में से 'अनन्त' निकाल दिया जाय तो उसमें कुछ भी नहीं बचता। उच्च-गणित में पग-पग पर 'अनंत' की जरूरत पड़ती है।

है न मजेदार बात ?

अनन्त का क्रम

हमें इस बात का गर्व होना चाहिए कि 'अनन्त' सम्बंधी जो उच्च-गणित आज विकसित हो रहा है, उस 'अनन्त' की सही-सही व्याख्या आज से लगभग ८५० वर्ष पहले हमारे देश के महान गणितज्ञ भास्कराचार्य ने की थी।

उसी 'अनन्त' के बारे में एक-दो मजेदार बातें तुम्हें और बताता हूं। वैसे तो इन बातों का सम्बंध उच्च गणित से है, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम इन्हें समझ लोगे।

तो सुनो. . . .

१, २, ३, ४, ५,. . . . .४४,. . . . .१५६७. . . .

संख्याओं के इस क्रम का कोई अन्त नहीं। अर्थात्, यह एक 'अनन्त क्रम' है। इसे 'प्राकृतिक संख्याओं का क्रम' भी कहते हैं।

अब, इन्हीं प्राकृतिक-संख्याओं के क्रम से उन संख्याओं को चुनो जो केवल 'सम संख्याएं' (वे संख्याएं

जिन्हें २ से भाग देना सम्भव हो) हैं। इसके बाद इन दोनों क्रमों को निम्न प्रकार से लिखो :

१, २, ३, ४, ५, ६,.... य,... (क)

↑↓ ↑↓ ↑↓ ↑↓ ↑↓ ↑↓ ↑↓

२, ४, ६, ८, १०, १२,.... २य,.... (ख)

तुम कहोगे—यह क्या ? अच्छा देखो—

तुम इतना तो जान ही गये हो कि ऊपर लिखा हुआ प्राकृतिक-संख्याओं का क्रम (क) अन्तहीन है, अर्थात् संख्याओं का यह समूह अनन्त है। तुम यह भी देख रहे हो कि नीचे की सम-संख्याओं के क्रम (ख) की संख्याएं, एक निश्चित नियम के साथ, ऊपर के समूह से ही चुनी गयी हैं। मैंने इन दोनों क्रमों की संख्याओं को वाण के निशान द्वारा सिर्फ जोड़ दिया है।

अब जो मजेदार बात तुम पाओगे वह यह है कि जोड़ने का यह क्रम 'अनन्त' दूरी तक चलता रह सकता है। (क) क्रम में कितनी भी बड़ी संख्या लो, उस संख्या को २ से गुणा कर देने पर (ख) क्रम की संख्या प्राप्त हो जायेगी। अर्थात् नीचे के क्रम की संख्याएं भी कहीं जाकर समाप्त नहीं होंगी; ऊपर के क्रम की तरह अनन्त दूरी तक बढ़ती चली जायेंगी।

दो अनन्त क्रमों (श्रेणियों) को इस प्रकार जोड़ने

की रीति को उच्च गणित में 'एकैकि-सम्बंध' यानी 'एक-एक का सम्बंध' (१←→१) कहते हैं।

कोई भी संख्या-समूह 'अनन्त' है कि नहीं, यह जानने के लिए, उसे इसी 'एक-एक के सम्बंध' की रीति से प्राकृतिक-संख्याओं के मान्य अनन्त-क्रम से जोड़कर देखा जाता है।

लेकिन इस क्रम में, और दूसरे अनेक क्रमों में, तुम यह देखोगे कि पहले क्रम की ही कुछ चुनी हुई संख्याएं, नियमानुसार, दूसरे क्रम में रख दी गई हैं। दूसरे शब्दों में : दूसरा क्रम (ख) पहले क्रम (क) का केवल एक अंश मात्र है।

पहला क्रम अनन्त है, और दूसरा क्रम भी, जो कि पहले क्रम का एक अंश है, अनन्त है। अनन्त का एक अंश अनन्त है ! सम्पूर्ण का एक भाग सम्पूर्ण !!

अर्थात्, अनन्त—अनन्त=अनन्त ($\infty - \infty = \infty$)।

है न मजेदार बात ?

लेकिन 'अनन्त' के गणित की तो यह केवल आरंभिक झलक है। पिछली शताब्दी के महान् जर्मन गणितज्ञ कैन्टर ने तो 'अनन्त' से सम्बन्धित एक नये ही गणित-शास्त्र को जन्म दिया।

शून्य और अनन्त ! गणित-शास्त्र के दो अनमोल

रत्न। रत्न बिना तो जीवन चल सकता है, लेकिन शून्य और अनन्त के बिना गणित कुछ भी नहीं।

शून्य और अनन्त! भौतिक-जगत् में जिनका कहीं भी नाम-निशान नहीं, केवल मनुष्य के मस्तिष्क की जो उपज हैं; फिर भी गणित और विज्ञान के माध्यम से विश्व के कठिन से कठिक रहस्यों को स्पष्ट करते हैं।

जानते हो, उस पुस्तक का क्या नाम है, जिसमें भास्कराचार्य ने शून्य और अनन्त की चर्चा की है?

उस पुस्तक का नाम है: 'बीजगणित'। 'लीलावती' (अंकगणित) की तरह 'बीजगणित' भी भास्कराचार्य के बड़े ग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' का एक अध्याय है।
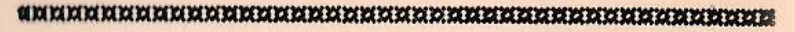
बीज क्रिया

इस 'बीजगणित' के आरम्भ में ही भास्कराचार्य कहते हैं:

"बीजगणित का अर्थ है, अव्यक्त-गणित। इस अव्यक्त (बीज) का आदि-कारण होता है: व्यक्त। इसलिए सबसे पहले 'लीलावती' में मैंने इस व्यक्त-गणित (अंकगणित) की चर्चा की है।

"बीजगणित की युक्तियों के बिना सवाल-जवाब के तरीकों को पंडित लोग भी नहीं जान सकते, मंदबुद्धि वाले तो बिलकुल ही नहीं जान सकते। इसलिए मैं अब बीज (अव्यक्त) क्रिया को बताता हूं।"

तुम भी शायद थोड़ा-बहुत बीजगणित जानते हो। भास्कराचार्य ने अपने 'बीजगणित' में जितने विषयों की चर्चा की है, उनका स्तर आजकल हाईस्कूल में पढ़ाये जाने वाले बीजगणित के स्तर से थोड़ा-सा ही ऊंचा है। हां, कुछ बातें ऐसी हैं जो एकदम समझ में नहीं आ सकतीं।

लेकिन तुम कल्पना करो आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले की । प्राचीन यूनान में केवल ज्यामिति का ही विकास हुआ था। इसलिए आज से एक हजार वर्ष पहले तक यूरोप के गणितज्ञों को उतना अंकगणित ज्ञात नहीं था, जितना भारतवासियों को ज्ञात था।

भारत की अंक-पद्धति जब अरब देश गयी तो साथ में यहां का बीजगणित भी गया। फिर अरबी भाषा से ये शास्त्र लैटिन भाषा में अनूदित हुए। १२ वीं शताब्दी के एक इतालवी गणितज्ञ 'पीसा के लियोनार्द' ने भारतीय अंकगणित और बीजगणित के आधार पर लैटिन भाषा में एक पुस्तक लिखी। यूरोप में बहुत वर्षों तक बीजगणित एवं अंकगणित की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के रूप में यह सम्मान से पढ़ी जाती रही।

इसके बाद यूरोप में जोरशोर से गणित का विस्तार होता गया। परन्तु हमारे देश में इसका विकास एकदम रुक गया।

भास्कराचार्य ने अपने 'बीजगणित' में जिन विषयों की चर्चा की है, उनमें से बहुतों की खोज बहुत पहले हो चुकी थी। उदाहरण के लिए, वर्ग-समीकरण बीजगणित का एक प्रमुख विषय है। इसमें अव्यक्त वर्ग-

राशि के दो मूलों को खोजना पड़ता है। मान लो कि समीकरण निम्न प्रकार का है :

$$अ\ स^{2} + ब\ स + क = ०$$

इस समीकरण में तीन पद हैं। पहले पद में अव्यक्त राशि 'स' वर्ग रूप में है। अ, ब, क स्थिरांक हैं; अर्थात् ये व्यक्त हैं और इनका मान व्यक्त है।

इस वर्ग समीकरण को एक विशिष्ट रीति से हल करने पर नीचे लिखे दो 'मूल' प्राप्त होते हैं—

$$स = \frac{-ब \pm \sqrt{ब^{2} - ४\ अ\ क}}{२\ अ}$$

$\sqrt{}$ चिन्ह के पहले ± चिह्नों के होने का अर्थ यह है कि पहले + को चिह्न को लिया जाय; तदनन्तर − चिह्न को।

हमारे देश में इस प्रकार के समीकरणों का हल सबसे पहले वैदिक काल में खोजा गया था। आर्यभट (४९९ ई.), महावीर (८५० ई.) आदि गणितज्ञों ने तो इस वर्ग-समीकरण का काफी स्पष्ट विवेचन किया है।

भास्कराचार्य ने $\sqrt{}$ के लिए 'क' अक्षर का उपयोग किया है। और, जिस प्रकार $\sqrt{}$ को आज हम 'वर्गमूल का चिह्न' [स्क्वायर-रूट] कहते हैं, उसी प्रकार

भास्कराचार्य ने गणित की इस क्रिया को 'करणी' का नाम दिया है।

आजकल वर्गमूल के लिए $\sqrt{\ }$ चिह्न का प्रयोग होता है। परन्तु पुराने ग्रंथ काव्य में लिखे जाते थे, इसलिए गणित के चिह्नों के लिए किसी शब्द या अक्षर का प्रयोग होता था। फलतः आज के गणित के ढेर सारे चिह्नों का आरम्भ जबकि यूरोप में हुआ, हमारे देश में चिह्नों की परम्परा विकसित नहीं हो पायी।

गणित के विकास में इन चिह्नों का बहुत बड़ा महत्व है। जैसे-जैसे नये सिद्धान्तों का आविष्कार होता गया, नये चिह्न बनाने पड़े। शब्दों की भाषा की अपेक्षा चिह्नों की भाषा में लिखा हुआ गणित अधिक स्पष्ट हो जाता है। भाषा के शब्दों का अर्थ एक-सा नहीं होता, परन्तु चिह्न का अर्थ स्थिर होता है।

आजकल के गणितज्ञ तो इस बात पर तुले हुए हैं कि गणित में केवल चिह्नों का ही प्रयोग हो। उनका कहना है कि भाषा के प्रयोग से कई बार सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। तुम उच्च-गणित की यदि कोई पुस्तक उठाकर देखो तो उसमें ऐसे-ऐसे चिह्न दिखाई देंगे जिनका मतलब तुम्हारी समझ में

नहीं आयेगा। पहले इन चिह्नों को अच्छी तरह से समझे बिना गणित का विषय समझ में नहीं आ सकता।

$\sqrt{३२}$ और $\sqrt{२}$ को क३२ और क२ लिखा जाता था। इसलिए क३२ $\times$ क२ $=$क६४ $=\sqrt{६४}$ $=$८।

गोलाध्याय...

'लीलावती' और 'बीजगणित' के बाद भास्कराचार्य ने 'गोलाध्याय' की रचना की। इस 'गोलाध्याय' में कुल १३ प्रकरण हैं :

	प्रकरण	श्लोक संख्या
१.	गोलप्रशंसा	९
२.	गोलस्वरूपप्रश्न	१०
३.	भुवनकोशः	६९
४.	मध्यगतिवासना	२५
५.	स्फुटगतिवासना	४४
६.	गोलबंध	३१
७.	त्रिप्रश्नवासना	४९
८.	ग्रहणवासना	७६
९.	दृक्‌कर्मवासना	२४
१०.	श्रृंगोन्नतिवासना	६
११.	यंत्राध्याय	५८
१२.	ऋतुवासना	१५
१३.	प्रश्नाध्याय	६४

इसके अतिरिक्त, परिशिष्ट के रूप में ज्या (साइन) की उत्पत्ति के बारे में चर्चा है।

'गोलाध्याय', जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ज्योतिष से सम्बंधित विषयों का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की दो-चार प्रमुख बातें तुम पिछले प्रकरण में पढ़ चुके हो। लेकिन ये ही दो-चार बातें इतनी महत्व की हैं कि यदि इन्हें आगे जाकर स्वस्थ वैज्ञानिक परम्परा में विकसित किया जाता, तो आज भारत ज्योतिष में एक अग्रगामी देश होता।

इसके अतिरिक्त 'गोलाध्याय' में ज्योतिष से सम्बंधित जो बातें हैं, वैज्ञानिक महत्व की अपेक्षा उनका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। आज ज्योतिष-शास्त्र इतना आगे बढ़ गया है कि इसकी तुलना में भास्कराचार्य की यह ज्योतिष-चर्चा काफी पिछड़ी हुई जान पड़ेगी।

'यंत्राध्याय' प्रकरण को ही लो। इस प्रकरण में ज्योतिष के यंत्रों की चर्चा है। शुरू में ही भास्कराचार्य बड़ी महत्वपूर्ण बात कहते हैं :

"काल के सूक्ष्म खण्डों का ज्ञान यन्त्रों के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए अब मैं यन्त्रों के बारे में कहता हूं..."

तो क्या भाकराचार्य की मी कोई वेधशाला थी क्या ?

कहना कठिन है। शायद आगे पता चले।

फिर वही सवाल

"पिता जी, यह पृथ्वी जिस पर हम निवास करते हैं, किस पर टिकी हुई है ?"

प्रश्न को सुनकर भास्कराचार्य कुछ झुंझला उठते हैं। तभी उन्हें ध्यान आता है—हां, कुछ समय पूर्व लीलावती ने यह प्रश्न पूछा था। उत्तर का ऋण क्यों बाकी रह जाय ? अच्छा, उत्तर दे ही दूं।

तुम भी सुन रहे हो न ?

भास्कराचार्य कह रहे हैं : "बाले लीलावती ! कुछ लोग जो यह कहते हैं कि यह पृथ्वी शेषनाग, कछुआ, हाथी या अन्य किसी वस्तु पर आधारित है, गलत कहते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि यह किसी वस्तु पर टिकी हुई है तो भी यह प्रश्न बना रहता है कि वह वस्तु किस पर टिकी हुई है ? और इस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर कभी नहीं मिलता। कारण का कारण,

और फिर इस कारण का कारण.... यह क्रम चलता ही रहेगा।

"इस प्रकार का तर्क गलत है। न्याय-शास्त्र में इस प्रकार के दोष को 'अनावस्था दोष' कहा गया है।"

"लेकिन फिर भी तो प्रश्न बना ही रहता है, पिता जी, कि पृथ्वी किस चीज पर टिकी हुई है?"

"क्यों? क्या हम यह नहीं मान सकते कि पृथ्वी किसी भी वस्तु पर आधारित नहीं है, यह निराधार है? यदि अन्त में जाकर हमें किसी न किसी आधारित वस्तु के लिए यह मान लेना पड़ता है कि वह निराधार है, तो हम पहले से ही क्यों न मान लें कि पृथ्वी निराधार है, किसी वस्तु पर टिकी हुई नहीं है? यदि हम पृथ्वी के स्वयं अपने ही बल पर टिके रहने को पहले ही 'धारणात्मिका-शक्ति' कह दें, तो इसमें क्या दोष है?"

"परन्तु यह कैसे सम्भव है?" लीलावती पूछे जा रही है।

"बेटी लीलावती! तुम नहीं जानतीं? वस्तुओं की शक्ति विचित्र है। पृथ्वी का अचल होना स्वाभाविक है.... मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रावत वस्तुशक्तय: ॥५॥ 'भुवनकोश:'।

"ओर सुनो—

"आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं
स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समेसमन्तात
क्व पतत्वियं खे ॥६॥ 'भुवनकोश:'।

"अर्थात्, पृथ्वी में आर्षकण शक्ति है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है। आकर्षण के कारण यह गिरती-सी लगती है। किन्तु जब चारों ओर का सारा आकाश निराधार है, तो फिर यह पृथ्वी क्यों नहीं निराधार हो सकती?"

इस तर्कसंगत बात को सुनकर लीलावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। साथ ही, उसे प्रकृति का एक नया रहस्य भी ज्ञात हो गया।

आंखों को धोखा

प्रकृति के इस रहस्य को बाद में 'गुरुत्वाकर्षण' नाम से प्रसिद्धि देने वाले हुए...

कौन ?

न्यूटन का नाम सुना होगा। तुम शायद यह भी जानते हो कि 'गुरुत्वाकर्षण' शक्ति की खोज न्यूटन ने ही की थी।

एक मामूली-सी घटना। न्यूटन एक दिन अपने बागीचे में एक सेब के पेड़ के नीचे बैठे कुछ सोच रहे थे। अचानक उनके सिर पर एक सेब गिरा। न्यूटन सिर को सहलाते हुए सोचने लगे—यह सेब नीचे ही क्यों गिरा, ऊपर क्यों नहीं चला गया ?

न्यूटन सोचते रहे...सोचते रहे। और बाद में उन्होंने 'गुरुत्वाकर्षण-सिद्धान्त' को जन्म दिया। आज न्यूटन को संसार 'गुरुत्वाकर्षण-सिद्धांत' के जन्मदाता के रूप में जानता है।

परन्तु न्यूटन से लगभग पांच सौ वर्ष पहले भास्कराचार्य ने पृथ्वी के इसी आकर्षण-सिद्धांत के बारे में सोचा था, इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। भास्कराचार्य के समय में भारत को जितना गणित और ज्योतिष ज्ञात था, यूरोप के किसी भी देश को उतना ज्ञात नहीं था। यदि भास्कराचार्य के बाद उन्हीं की योग्यता के गणितज्ञ हमारे देश में होते चले आते, तो जो बड़े-बड़े आविष्कार बाद में यूरोप में हुए, वे निश्चित रूप से हमारे देश में हुए होते। लेकिन, दुर्भाग्य कि भास्कर की परम्परा को निभानेवाला कोई भी गणितज्ञ उनके बाद हमारे देश में नहीं हुआ।

आज तो दूर-दूर के देशों की लम्बी-लम्बी यात्राएं सुगम हो गयी हैं। जहाज या विमान से पृथ्वी-परिक्रमा करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी गोल है। परन्तु प्राचीन काल में दूर-दूर के देशों की यात्राएं बड़ी कठिन थीं; पृथ्वी-परिक्रमा तो एकदम असम्भव थी। बहुत बाद में जाकर कोलम्बस और मेगेलान ने लम्बी-लम्बी यात्राएं कीं।

पृथ्वी पर खड़े रहने से यही प्रतीत आता है कि यह धरती सपाट है। इसलिए प्राचीन काल से लोगों का विश्वास बना रहा कि पृथ्वी सपाट ही है।

परन्तु देखो, लीलावती पूछ ही बैठी. . . .

"पिता जी ! सब लोग तो कहते हैं कि पृथ्वी सपाट है, और मुझे भी, जिधर देखती हूँ, उधर यह सपाट ही सपाट नजर आती है। फिर आप क्यों कहते हैं कि यह पृथ्वी गोल है ?"

"बाले बाल-कुरंग-लोल-नयने लीलावती ! हे हिरणी-सी आंखों वाली पुत्री लीलावती। ये जो हमारी आंखें हैं न, ये कई बार हमें धोखे में डाल देती हैं। जैसा दिखाई देता है, सदा वैसा ही सत्य नहीं होता। पृथ्वी का सपाट देखाई देना, हमारी आंखों का एक भ्रम मात्र ही है।

"तुम एक बड़ा-सा वृत खींचो। फिर इसकी परिधि के केवल सौवें भाग को देखो। तुम को वृत्त-परिधि का यह सौवां भाग एक सीधी रेखा-सा ही दिखाई देता है। वास्तव में यह वैसा नहीं है। सौवां ही क्यों, हजारवां हिस्सा भी हो तो वह वक्र ही रहेगा, एकदम सीधा कभी नहीं होगा। इसी प्रकार, यह पृथ्वी एक विशाल गोला है। इस विशाल गोले की तुलना में हम बहुत छोटे हैं और एक स्थान पर खड़े होकर पृथ्वी के गोले के बहुत ही कम भाग को देख पाते हैं। इसीलिए यह हमें सपाट नजर आतो है। वास्तव में पृथ्वी गोल है।

"सुनो—

समो यतः स्यात्परिधेः शतांशः
पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना
समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥ १३ ॥ 'भुवनकोशः।'

भास्कराचार्य इतनी बातें जानते हैं तो क्या उनके पास अपनी कोई 'वेधशाला' भी है ?

चलो उनके कमरे में चल कर देखें।

वेधशाला

आलमारी में लाल कपड़ों में बंधी हुई बहुत-सी हस्त-लिखित पुस्तकें रखी हुई हैं। कमरे में गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शंकु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक, धी इत्यादि यंत्र रखे हुए हैं।
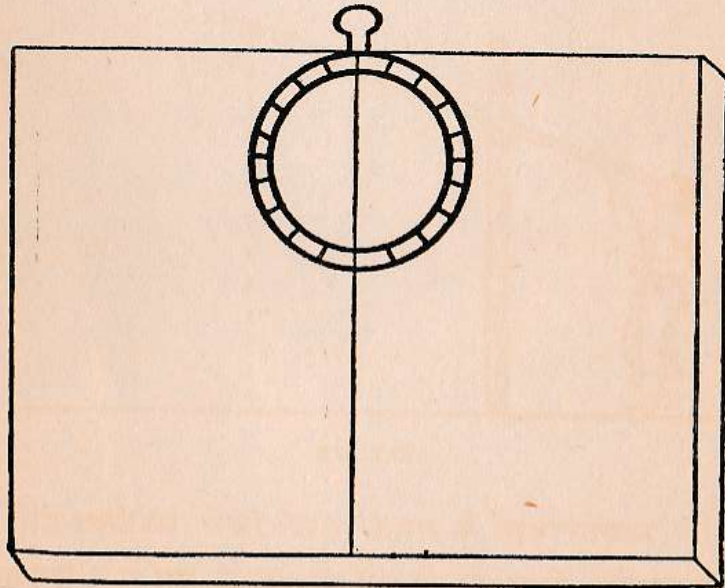
फलक यंत्र

घटी-यंत्र के बारे में तुम पहले ही पढ़ चुके हो। वही यंत्र जिसके कारण लीलावती का विवाह रुक गया था।

भास्कराचार्य के वर्णन के अनुसार फलक-यंत्र की आकृति उसी प्रकार की होगी जैसी पृष्ठ ८० पर है।

'यष्टि' के अग्र (सिरा) तथा आंख की ऊंचाई और इन दोनों के बीच की क्षैतिज दूरी जानकर आकाशीय पिंडों का उन्नतांश इस यंत्र से नापा जाता था।
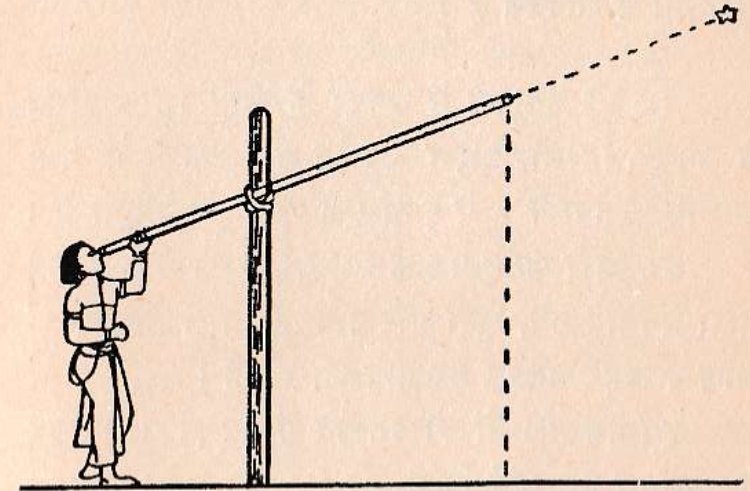
यष्टि यंत्र

भास्कराचार्य के समय तक जिन ज्योतिष-यंत्रों का उपयोग होता था, वे बड़े ही सरल यंत्र थे। उनके निर्माण और उपयोग में अधिक कठिनाई नहीं होती थी।

सन् १६१० में इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो गैलीली ने दूरबीन का आविष्कार किया।

इतिहास की यह पहली दूरबीन दूर की वस्तुओं को एक हजार गुना नजदीक और ३० गुना बड़े आकार में देख सकती थी। इसके बाद और भी बड़ी दूरबीनों का निर्माण होता रहा और ज्योतिष के ज्ञान में वृद्धि होती गयी। आज संसार की वेधशालाएं बड़ी-बड़ी दूरबीनों से सज्जित हैं।

१७ वीं शताब्दी में जयपुर के महाराजा जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, उज्जैन और काशी में वेधशालाएं बनवायीं। वे स्वयं एक अच्छे ज्योतिषी थे।

ढेर सारी जगह पर फैले हुए, महाराजा जयसिंह द्वारा बनवाये गये, चूना और पत्थर के ये 'ज्योतिष-यंत्र' आज खण्डहर बनकर ढेर होते जा रहे हैं।

इन वेधशालाओं को बनवाने में महाराजा जयसिंह ने बहुत सा धन खर्च किया था। उनके समय के पहले यूरोप में बहुत-सी दूरबीनें बन चुकी थीं।

काश! पत्थर के 'यंत्र' खड़े करने के बजाय, ज्योतिष-प्रेमी महाराजा जयसिंह ने उपरोक्त पांच नगरों में पांच 'दिव्यदृष्टियां' (दूरबीनें) खड़ी कर दी होतीं!

सिद्धांतशिरोमणि

अब तुम भास्कराचार्य की वेधशाला से बाहर आ गये हो। अच्छा हुआ कि तुमने भास्कराचार्य की वेधशाला देख ली। भास्कराचार्य के कुछ ग्रन्थों का भी तुम्हें ज्ञान हो गया है।

क्या ?...क्या पूछ रहे हो तुम ?

कौन थे भास्कराचार्य ?

ओह! यह प्रश्न अभी पूछे ही जा रहे हो!

अच्छा सुनो, बता ही दूं।

भास्कराचार्य ने अपना गोत्र शांडिल्य बताया है। परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि वे किस राजा के आश्रय में राज ज्योतिषी थे। जिस शिलालेख की आरम्भ में चर्चा की गयी है उससे तो स्पष्ट होता है कि भास्कराचार्य के पौत्र चंगदेव देवगिरि के यादववंशीय सिंह राजा के राज-ज्योतिषी थे।

तो क्या इससे यह अनुमान लगाना ठीक होगा

कि भास्कराचार्य भी देवगिरि राज्य के राज-ज्योतिषी थे ?

हां, यह सच है कि उस समय साहित्यिकों, संगीतज्ञों, कलाकारों और ज्योतिषियों को जीवनयापन के लिए राजाश्रय प्राप्त करना पड़ता था। और फिर, तुम तो जानते ही हो कि जिसका नमक खाना पड़ता है, उसकी प्रशंसा भी करनी पड़ती है।

तो क्या भास्कराचार्य ने भी यही किया ?

नहीं, भास्कराचार्य के ग्रंथों में किसी राजा की स्तुति तो दूर रही, जिक्र तक नहीं है। वे तो बस, मानो लीलावती को पढ़ाने और गणित व ज्योतिष के नये सिद्धान्त स्थापित करने में ही तल्लीन रहते थे।

भास्कराचार्य का प्रमुख ग्रन्थ है: 'सिद्धान्त-शिरोमणि।' यह मुख्यतः दो भागों में विभक्त है: 'गणिताध्याय' ('लीलावती' और 'बीजगणित') और 'गोलाध्याय'।

तुम पूछोगे: क्या भास्कराचार्य ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' के अलावा भी कोई और ग्रन्थ लिखा है ?

हां, उनका एक और ग्रन्थ प्राप्य है। उसका नाम है: "करण-कुतूहल।"

'करण-कुतूहल' ग्रन्थ की रचना शक-संवत् ११०५
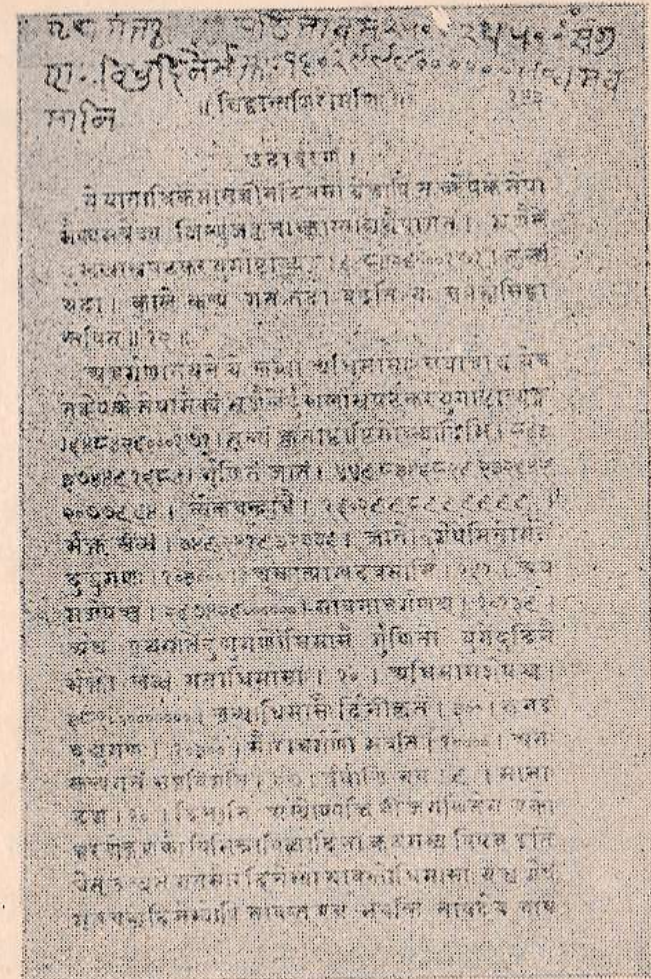
सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की सबसे पहली छपी पुस्तक के पृष्ठ १४३ पर एक उदाहरण

अर्थात् ई. सन् ११८३ में हुई। भास्कराचार्य का जन्म सन् ११०४ में हुआ था, इसलिए 'करण-कुतूहल' की रचना के समय उनकी आयु ६९ वर्ष की होनी चाहिए।

इतनी वृद्ध अवस्था में करण-ग्रन्थ की रचना करना बड़े साहस की बात है। इससे पता चलता है कि ६९ वर्ष की आयु में भी उनके शरीर और बुद्धि में किसी प्रकार की थकान नहीं आयी थी।

'करण-कुतूहल' में पंचांग बनाने की विधि, लग्न, कुंडली आदि ज्ञात करने की विधि और फलित-ज्योतिष सम्बन्धी अन्य बातें हैं। भास्कराचार्य के बाद, बहुत वर्षों तक यह ग्रंथ ज्योतिषियों की 'गीता' के रूप में आदरणीय माना जाता रहा। दक्षिण भारत में तो इसका बहुत ही प्रचार रहा।

तुम शायद पूछोगे कि, 'सिद्धान्तशिरोमणि' को तो भास्कराचार्य ने ३६ वर्ष की आयु में लिखा और इस 'कारण-कुतूहल' को ६९ वर्ष की आयु में; तो बीच के इन ३३ वर्षों में भास्कराचार्य क्या करते रहे? क्या उन्होंने और भी ग्रंथ लिखे?

भास्कराचार्य जैसा विद्वान बीच के इतने लम्बे समय तक निष्क्रिय नहीं बैठ सकता था। जरूर उन्होंने कुछ न कुछ खोजा होगा, कुछ न कुछ लिखा होगा।

कुछ विद्वान् निम्नलिखित ग्रंथ भास्कराचार्य द्वारा लिखे हुए मानते हैं, परन्तु निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता—

करणकेशरी, ग्रहगणित, ग्रहलाघव, ज्ञान-भास्कर, सूर्यसिद्धान्त-व्याख्या, भास्कर-दीक्षितीय।

भास्कराचार्य ने अपने 'सिद्धान्तशिरोमणि' पर स्वयं 'वासना भाष्य' नाम की टीका लिखी है।

इसके अलावा, 'सिद्धान्तशिरोमणि' की (लीलावती और बीजगणित की सबसे अधिक) कई टीकाएं और अनुवाद उपलब्ध हैं।

अकबर के नवरत्न-दरबार के फैजी ने सन् १५८७ में 'लीलावती' का फारसी भाषा में अनुवाद किया। शाहजहां के दरबार के अताउल्लाह रसीदी ने सन् १६३४ में 'बीजगणित' का फारसी में अनुवाद किया।

अंग्रेजी में 'लीलावती' का पहला अनुवाद जे. टेलर महाशय ने सन् १७१६ में किया। सन् १८१७ में एच. टी. कोलब्रुक महाशय ने 'लीलावती' और 'बीज-गणित' का अंग्रेजी में अनुवाद किया (अलजेबरा विद अरिथमेटिक एण्ड मेन्सुरेशन फ्राम दि संस्कृत आव ब्रह्म-गुप्त एण्ड भास्कर, लंडन १८१७)।

लीलावती के फारसी अनुवाद का एक पृष्ठ

हिन्दी में भी 'लीलावती', 'बीजगणित' और 'गोलाध्याय' के कई अनुवाद उपलब्ध हैं।

अरे हां, एक बात मैं तुम्हें और बता देना चाहता हूं। भूलना नहीं। भास्कराचार्य से पहले भी

भास्कर नाम के एक और ज्योतिषी हुए हैं। गड़बड़ी न हो इसलिए उन्हें भास्कर प्रथम कहते हैं और जिन भास्कराचार्य तुम पर पुस्तक पढ़ रहे हो उन्हें भास्कर द्वितीय।

भास्कर प्रथम का समय ७वीं शताब्दी है, और सन ६२९ में उन्होंने दो ग्रंथ लिखे : 'महाभास्करीय' और 'लघुभास्करीय।'

भास्कर द्वितीय के बारे में और क्या बताऊं ?

गणितज्ञ ही नहीं, कवि भी...

भास्कराचार्य के बारे में जो सामग्री उपलब्ध है, उसी में से मैंने तुम्हें उनकी जीवन-कथा सुनायी।

'करण-कुतूहल' की ६९ वर्ष की आयु में रचना हुई, यह तो भास्कराचार्य ने स्वयं अपने ग्रंथों में लिखा है। किन्तु, इसके बाद का हवाला उनके किसी ग्रंथ में नहीं मिलता, यह भी तुम जान गये हो।

भास्कराचार्य की मृत्यु किस साल हुई, वे कितने साल जिये, यह किसी ने कहीं नहीं लिख छोड़ा। और यदि कहीं लिख भी छोड़ा हो, तो आज हमें उसका पता नहीं।

हम केवल यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे काफी लम्बी उम्र तक जिये, क्योंकि ६९ वर्ष की आयु में जब उन्होंने 'करण-कुतूहल' ग्रन्थ लिखा, वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ थे।

भास्कराचार्य केवल शुष्क-गणितज्ञ ही नहीं थे। उन्होंने अन्य शास्त्रों का भी गहन अध्ययन किया था।

इसीलिए 'लीलावती' के अन्त में उनके किसी शिष्य ने एक श्लोक और जोड़ दिया, जिसका अर्थ है—

"वह आठ प्रकार के व्याकरण और छः प्रकार की भिषज-संहिताओं का विवेचन कर सकता है; वह तर्कविद्या के छः अंगों का, गणितशास्त्र के पांच अंगों का और चार वेदों का पूर्ण ज्ञाता है। विभिन्न प्रकार की मीमांसाओं के अन्तर को वह समझता है। ऐसा है, कवि भास्कर।"

गणितज्ञ एवं ज्योतिषी होने के साथ-साथ भास्कराचार्य उच्च कोटि के कवि भी थे। उनकी काव्यशैली अनुप्रासयुक्त है। 'गोलाध्याय' के 'ऋतु वर्णन' में यमक और श्लेष की सुन्दर बहार दिखायी देती है। लीलावती के उदाहरण कठिन होते हुए भी काव्यमय हैं। भास्कर की भाषा गठी हुई है और विषय मंजा हुआ होने के कारण, उनके ग्रन्थों को समझना एकदम सरल नहीं है। इसीलिए बाद के किसी ज्योतिषी ने कहा है:

"भास्करीय गिरां सारं भास्करो वा सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा वेत्ति विदुर्नान्ये तु मादृशा॥"

अर्थात्, भास्कर के लेखन को या तो स्वयं भास्कर ही समझ सकता है, या सरस्वती या फिर ब्रह्मा। हमारे जैसे पुरुषों के बस की यह बात नहीं।

सचमुच, भास्कराचार्य के बाद उनको पूरी तरह से समझने वाला, या उनकी परम्परा को निभाने वाला कोई भी गणितज्ञ भारत में पैदा नहीं हुआ। हजारों वर्षों के गहरे चिन्तन के बाद भारतीय गणित भास्कराचार्य के रूप में गौरव के उच्चतम शिखर पर पहुंच गया था।

लेकिन उसके बाद. . . .

गणित, ज्योतिष और अन्य शास्त्रों का विकास हमारे देश में तब तक होता रहा जब तक कि देश में सुख और शांति थी। जब देश में आपसी युद्ध होने लगे, विदेशियों के आक्रमण और अयोग्य शासन-व्यवस्था फैली, तो गणित एवं ज्योतिष तो क्या, सभी शास्त्रों का अध्ययन ठंडा पड़ गया।

बारहवीं शताब्दी के बाद भारतवर्ष में बहुत ही कम मौलिक कार्य हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों पर भाष्य अवश्य लिखे गये, और कुछ नये ग्रंथ भी लिखे गये, किन्तु इनमें नयी बातें नहीं के बराबर थीं।

१९वीं शताब्दी के अन्त तक भारत मानो ज्ञान के अंधेरे में सोता रहा हो। २०वीं शताब्दी में रामानुजन की अद्‌भुत प्रतिभा के रूप में गणित का पुनः जागरण हुआ।

रामानुजन का नाम तो तुमने सुना ही होगा। केवल ३३ वर्ष की आयु में इनका देहान्त हुआ। थोड़े ही समय में इन्होंने अपनी खोजों से संसार को चकित कर दिया। उनकी खोजें उसी अंकशास्त्र से सम्बंधित हैं, जिसका आविष्कार भारत में हुआ था। रामानुजन की गवेषणाओं का इतना अधिक महत्व है और वे इतनी अधिक गहन हैं कि रामानुजन को सच ही 'गणितज्ञों का गणितज्ञ' कहा जाता है।

एक लम्बे अरसे के बाद हम स्वतंत्र हुए। तुम्हारा जन्म स्वतंत्र भारत में हुआ, इसलिए तुम पूरी तरह से स्वतंत्र-चिंतन के अधिकारी हो।

तुम देख ही चुके हो कि प्राचीन भारतीय गणित एवं ज्योतिष की विदेशी पंडितों ने भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। भास्कराचार्य को जब उन लोगों ने पढ़ा तो वे दंग रह गये। इसीलिए आज से लगभग सौ वर्ष पहले सन् १८५९ में 'रायल एस्ट्रॉनोमिकल सोसायटी (लंडन)' के जर्नल (मुखपत्र) में डा. स्पोटवुड ने लिखा था—

"भास्कराचार्य की विवेचन-सूक्ष्मता उच्च-कोटि की है, यह हमें स्वीकार करना होगा। भास्कराचार्य ने जिन गणित-ज्योतिष-सिद्धांतों की स्थापना की है, उनकी

तुलना हम आधुनिक गणित-ज्योतिष शास्त्र से कर सकते हैं।"

विज्ञान के अध्ययन को लगन को हम एक ही उपाय से नव-जागृत कर सकते हैं। वह उपाय है: विज्ञानों का सिरताज—गणित। गणितशास्त्र का अध्ययन।

गणितशास्त्र के अध्ययन के लिए न किसी प्रयोगशाला की जरूरत होती है, न अधिक धन की जरूरत होती है।

इसलिए, भास्कराचार्य जैसे हमारे देश के प्राचीन विद्वानों से प्रेरणा लेकर और वर्तमान शताब्दी के महान गणितज्ञ रामानुजन का आदर्श सामने रखकर, गणित शास्त्र के अध्ययन में तन-मन-धन से जुट जाओ और कुछ ऐसा कर दिखाओ कि भारत विज्ञान के नये क्षितिज पर अपनी पताका फहराये।

परिशिष्ट—१

भास्कराचार्य के सम्बंध में कुछ प्रमुख बातें

जन्म	: विज्जडविड गांव (महाराष्ट्र) १११४ ई. सन्
पिता एवं गुरु	: महेश्वर
पुत्र	: लक्ष्मीधर
पौत्र	: चंगदेव
पुत्री	: लीलावती
११५० ई. सन्	: "सिद्धान्तशिरोमणि" ग्रन्थ की रचना। यह ग्रन्थ मुख्यतः दो भागों में विभाजित है—"गणिताध्याय" और "गोलाध्याय"। "गणिताध्याय" की दो पुस्तकें हैं—"लीलावती" तथा "बीजगणित"। केवल ३६ वर्ष की आयु में भास्कराचार्य ने "सिद्धान्तशिरोमणि" की रचना की थी।
११८३ ई. सन्	: "करण-कुतूहल" ग्रन्थ की रचना। इस समय भास्कराचार्य की आयु ६९ वर्ष की थी।
मृत्यु	: भास्कराचार्य की मृत्यु ठीक किस साल हुई, इसके बारे में कुछ पता नहीं चलता। किन्तु इतना निश्चित है कि वे ७० वर्ष तक जीवित रहे।

परिशिष्ट–२

प्राचीन भारतीय गणितज्ञ एवं ज्योतिषी

नाम	ग्रन्थ	समय
—	वेदांगज्योतिष	ईसापूर्व ५००० वर्ष
—	सूर्य-सिद्धान्त	
आपस्तम्ब, मानव, कात्यायन, बोधायन	शुल्व-सूत्र ग्रन्थ	ई. पू. ८०० से ई. पू. ४०० तक
—	भसाली हस्तलिपि	ल. ३०० ई. पू.
आर्यभट	आर्यभटीय	४९९ ई. स.
वराहमिहिर	पंच सिद्धान्तिका, वृहत्संहिता, वृहज्जातक	ल. ५५० ई.
ब्रह्मगुप्त	खड-खाद्यम, ब्राह्म-स्फुट सिद्धांत, ध्यान ग्रहोपदेश	६२८ ई.
भास्कर प्रथम	महाभास्करीय	६२९ ई. स.
	लघुभास्करीय	
लल्ल	शिष्य-धी वृद्धिद	७४८ ई. स.
श्रीधर	त्रिशतिका	७५० ई. स.
महावीर	गणित-सार-संग्रह	८५० ई. स.
श्रीपति	गणित तिलक, सिद्धान्त शेखर	१०३९ ई. स.
मंजुल	लघुमानस	९३२ ई. स.
भास्कराचार्य	सिद्धान्तशिरोमणि, इत्यादि	११५० ई. स.